मान मन्दिर बरसाना

मासिक पत्रिका,जनवरी २०२३,वर्ष ०७,अंक०१

श्रीराधामानबिहारीलाल
का प्राकट्य-महोत्सव
मनाया गया
(५ दिसम्बर २०२२)

पद्मश्री पूज्यश्री बाबा
महाराज का ८५ वाँ
जन्म -महोत्सव
मनाया गया
(१५ दिसम्बर २०२२)

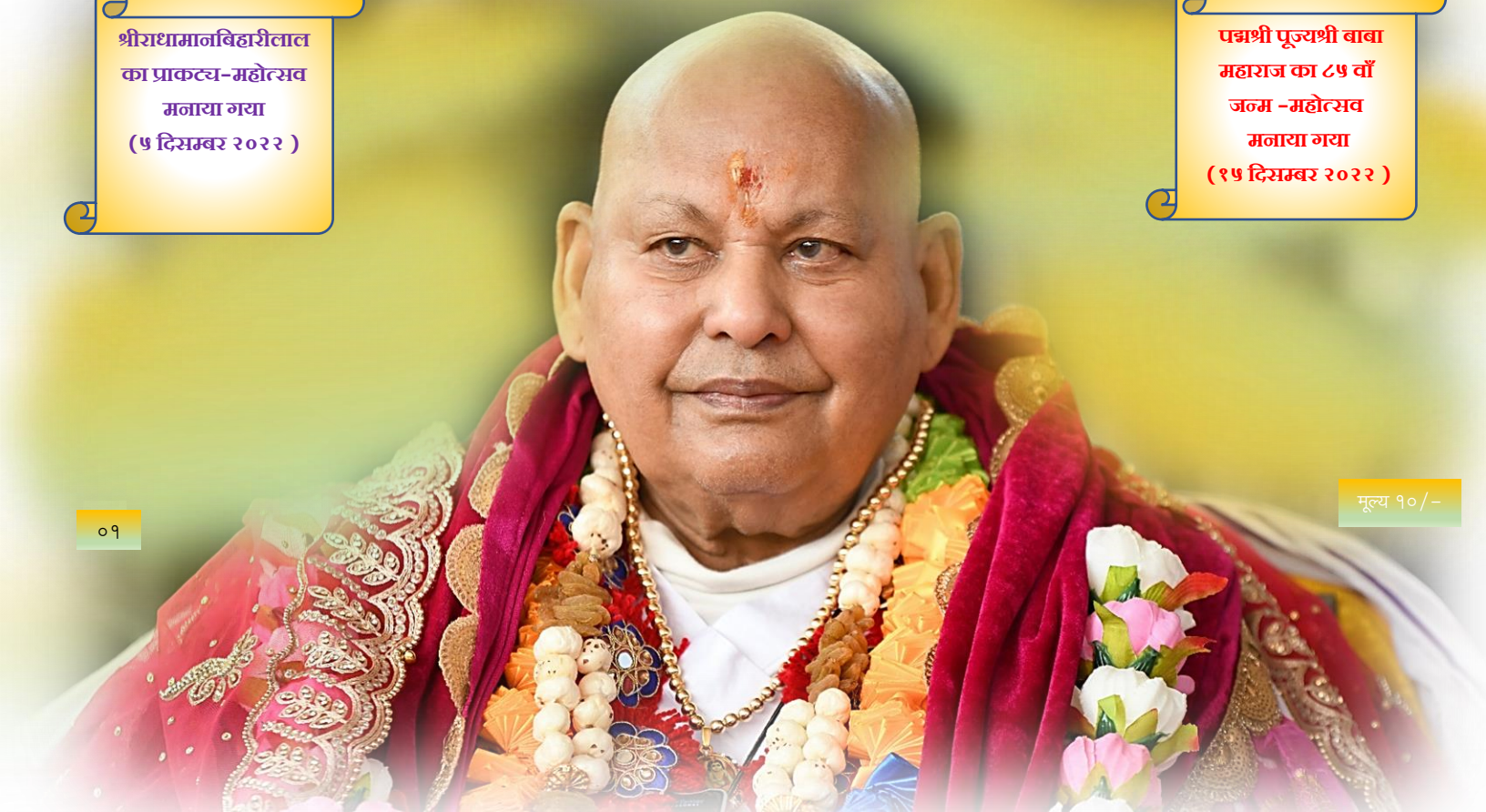

मूल्य १०/-

पूज्यश्री
बाबा महाराज
के जन्मोत्सव
की झलकियाँ

अनुक्रमणिका

विषय- सूची — पृष्ठ- संख्या

१ बाबाश्री की जन्म–बधाई.....०५
२ बाबाश्री की बाल–लीलाएँ.....०७
३ पारमार्थिक–पथ ही परम सत्य.....११
४ परम वात्सल्यमयी 'श्रीराधारानी'.....१३
५ भव–निस्तारक 'श्रीगुरुदेव'.....१५
६ स्वदोष–दर्शन से श्रीइष्ट–प्राप्ति सहज.....१७
७ वास्तविक भक्ति 'दीनता'.....२०
८ सुदैन्यमयी आराधना से श्रीकृपानुभूति.....२२
९ भक्ति–सार 'भक्त–संग'.....२४
१०भक्त–आसक्ति से भव–मुक्ति.....२७
११'स्पृहाशून्य जन' ही स्थितप्रज्ञ.....३०
१२ असंगता की पहिचान 'समत्व भाव'.....३२

|| राधे किशोरी दया करो ||

हमसे दीन न कोई जग में,
बान दया की तनक ढरो |
सदा ढरी दीनन पै श्यामा,
यह विश्वास जो मनहि खरो |
विषम विषयविष ज्वालमाल में,
विविध ताप तापनि जु जरो |
दीनन हित अवतरी जगत में,
दीनपालिनी हिय विचरो |
दास तुम्हारो आस और की,
हरो विमुख गति को झगरो |
कबहूँ तो करुणा करोगी श्यामा,
यही आस ते द्वार पर्‌यो | — *पूज्यश्री बाबामहाराज कृत*

संरक्षक– **श्रीराधामानबिहारीलाल**

प्रकाशक **– राधाकान्त शास्त्री, मानमंदिर सेवा संस्थान,**
गह्वरवन, बरसाना, मथुरा (उ.प्र.)

mob. राधाकांत शास्त्री 9927338666
ब्रजकिशोरदास.....6396322922

(Website :www.maanmandir.org)

(E-mail :info@maanmandir.org)

श्रीमानमंदिर की वेबसाइट www.maanmandir.org के द्वारा आप प्रातःकालीन सत्संग का ८:३० से ९:३० बजे तक तथा संध्याकालीन संगीतमयी आराधना का सायं ६:३० से ८:०० बजे तक प्रतिदिन लाइव प्रसारण देख सकते हैं |

परम पूज्यश्री रमेश बाबा महाराज जी द्वारा सम्पूर्ण भारत को आह्वान –
"मजदूर से राष्ट्रपति और झोंपड़ी से महल तक रहने वाला प्रत्येक भारतवासी विश्वकल्याण के लिए गौ–सेवा–यज्ञ में भाग ले |"

*** योजना ***

अपनी आय से १ रुपया प्रति व्यक्ति प्रतिदिन निकाले व मासिक, त्रैमासिक, अर्धवार्षिक अथवा वार्षिक रूप से इकट्ठा किया हुआ सेवाद्रव्य किसी विश्वसनीय गौसेवा प्रकल्प को दान कर गौरक्षा कार्य में सहभागी बन अनंत पुण्य का लाभ लें | हिन्दूशास्त्रों में अंशमात्र गौसेवा की भी बड़ी महिमा का वर्णन किया गया है |

विशेष:– इस पत्रिका को स्वयं पढ़ने के बाद अधिकाधिक लोगों को पढ़ावें जिससे आप पुण्यभाक् बनें और भगवद्–कृपा के पात्र बनें | हमारे शास्त्रों में भी कहा गया है –

सर्वे वेदाश्च यज्ञाश्च तपो दानानि चानघ | जीवाभयप्रदानस्य न कुर्वीरन् कलामपि || (श्रीमद्भागवत३/७/४१)

अर्थ:– भगवत्तत्त्वके उपदेश द्वारा जीव को जन्म–मृत्यु से छुड़ाकर उसे अभय कर देने में जो पुण्य होता है, समस्त वेदों के अध्ययन, यज्ञ, तपस्या और दानादि से होनेवाला पुण्य उस पुण्य के सोलहवें अंश के बराबर भी नहीं हो सकता |

प्रकाशकीय

धर्मार्थ–काम–मोक्ष की प्राप्ति के लिए मनुष्य–शरीर की सार्थकता शास्त्रों में बताई गयी है। यही कारण है कि मानव–जीवन के सौ वर्षों को चार भागों में विभक्त कर ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं सन्यास का मार्ग प्रशस्त किया गया है। इन सबकी प्राप्ति भी निहित स्वार्थ को ही दर्शाती है। अनन्तकाल की यम–यातनाओं को भोगने के पश्चात् कहीं देवदुर्लभ मनुष्य शरीर मिलता है, जिसका एकमात्र सार्थक उद्देश्य भगवत्प्राप्ति ही है, जो किसी साधन या पुरुषार्थ से सम्भव नहीं है। महापुरुष की अनन्याश्रय के साथ निरीह, निष्किंचन, निष्काम रहनी का प्रभु–प्राप्ति के अतिरिक्त अन्य कोई ध्येय नहीं होता है। ब्रज–वसुन्धरा ने ऐसे अनेक महापुरुषों को जन्म देकर लोक–कल्याण की कृपा की है। बरसाना के परम विरक्त संत पद्मश्री पूज्यश्रीरमेशबाबाजीमहाराज की अनन्यता जग–जाहिर है, जिन्होंने अपने ८५ वर्ष के जीवनकाल में कभी कुछ भी संग्रह नहीं किया। अखण्ड ब्रजवास करते हुए इतनी बड़ी समयावधि में एक पैसे का भी स्पर्श नहीं किया, यही नहीं उन्होंने श्रीमीराजी जैसा जीवन जिया है –

मैं तो गिरधर के घर जाऊँ।
जहाँ बिठावै तित ही बैठूँ, बेचै तो बिक जाऊँ॥
जो पहरावै सोई पहरूँ, जो दे दै सोई खाऊँ।
मेरी उनकी प्रीत पुराणी, उण बिन पल न रहाऊँ॥

ऐसे महापुरुषों का जीवन केवल परमार्थ के लिए ही होता है। हर ब्रजवासी में व ब्रज के प्रत्येक रजकण में अपने आराध्य के दर्शन की उच्चतम भावनाओं ने लाखों अनुयायी साधकों को भी वैसी ही भावनाओं से ओतप्रोत किया है। शास्त्रों में कहा भी है –

सर्वे वेदाश्च यज्ञाश्च तपो दानानि चानघ।
जीवाभयप्रदानस्य न कुर्वीरन् कलामपि॥ (श्रीभागवतजी ३/७/४१)

यदि ऐसे महापुरुषों का आश्रय मिल जाए तो 'भगवत्प्राप्ति' जो अत्यन्त कठिन क्या असम्भव ही है, वह सहज सुलभ हो जाए; ये महज्जन भगवद्रूप ही होते हैं, इनकी कृपा साक्षात् श्रीहरि की कृपा है। आओ, हम भी इनकी अनमोल वाणी का आस्वादन कर अपने को अनुग्रहीत करें।

प्रबन्धक

राधाकान्त शास्त्री

श्रीमानमंदिर सेवा संस्थान ट्रस्ट

बाबाश्री की जन्म–बधाई

**भए सब भाव विभोर,
श्रीबाबा जनम लियौ ।**

जब से जनम लियौ बाबा ने,
खुशियाँ मनाते सब मनमाने;
जन–जन में भयौ शोर, श्रीबाबा जनम लियौ
मंगल ध्वनि शहनाई बजाई,
राधा संग नाचैं कुँवर कन्हाई;
मंगल भयौ चहुँ ओर, श्रीबाबा जनम लियौ ।
ऋषि–मुनि सब संत जनन में,
भक्त जनन व ब्रज रसिकन में;
उठी आनन्द हिलोर, श्रीबाबा जनम लियौ ।
त्रिवेणी संगम अति हरषावैं,
तीर्थराज भी नाचैं–गावैं;
उत्सव होवै घनघोर, श्रीबाबा जनम लियौ ।
अद्भुत बालक देखके दिव्य,
मात–पिता भए धन्य–धन्य;
भई भक्ति बड़ी जोर, श्रीबाबा जनम लियौ ।
दीदीजी के परम दुलारे,
रहते सदा नैनन के तारे;
घरवार दियौ छोर, श्रीबाबा जनम लियौ ।
चित्रकूट के घने जंगल में,
टेर लगाते इष्ट–विरह में;
मिली फिर ब्रज की कोर, श्रीबाबा जनम लियौ ।
आये श्रीमानभवन में,
रत रहते राधाराधन में;
कीर्तन कौ भयौ ठौर, श्रीबाबा जनम लियौ ।
ब्रज घर–घर करवायो कीर्तन,
बनवाये ब्रजलीला–कुण्डन;
तीर्थन कौ भयौ भोर, श्रीबाबा जनम लियौ ।
सत्संग–सेवा–महिमा कही,
जासै दिन–दिन गौ–वृद्धि भई;
ब्रज–सेवा बेजोर, श्रीबाबा जनम लियौ ।
राधारस फैलायो जग में,
दिव्य प्रेम धन मिल्यौ सहज में;
ब्रजरस में सब बोर, श्रीबाबा जनम लियौ ।

**तीर्थराज में जन्मे बाबा
लाखों प्रणाम,
बाबा लाखों प्रणाम ।**

लाखों प्रणाम बाबा लाखों प्रणाम ...।।
माँ हेमेश्वरि नैनन तारे लाखों प्रणाम ...।
दीदीजी के परम दुलारे लाखों प्रणाम ...।
श्रीबरसानावासी बाबा लाखों प्रणाम ...।
गहवरवन की शोभा बाबा लाखों प्रणाम ...।
मानमन्दिर उजियारे बाबा लाखों प्रणाम ...।
राधाचरन उपासक बाबा लाखों प्रणाम... ।
भक्तन के आधारे बाबा लाखों प्रणाम... ।
श्रीसंकीर्तन–प्रेरक बाबा लाखों प्रणाम ...।
ब्रजयात्रा संचालक बाबा लाखों प्रणाम ...।
वन–पर्वत रखवारे बाबा लाखों प्रणाम ...।
ब्रज के कुण्ड उद्धारक बाबा लाखों प्रणाम ...।
गौअन–पालनहारे बाबा लाखों प्रणाम ...।
ब्रजभक्ति–उपदेशक बाबा लाखों प्रणाम ...।
ब्रजवासिन के प्यारे बाबा लाखों प्रणाम ...।

कोटिन कोटि बरस बाबा जीयौ ।

रागी बैरागी अनुरागी,
बड़भागी गहवर वन ठीयौ।।
जुगल कृपा कौ आश्रय लै–लै,
मन–क्रम–वचन निभावै हीयौ।
वन कौ संरक्षन–संवर्द्धन,
अवलम्बन जय–विजयी कीयौ।।
गौ के वंश कौ बन सेवायत,
खोल खिरक माँ कूँ सुख दीयौ।
जप तप योग नियम वृत संयम,
सर्वस अपनों अर्पन कीयौ।।
ब्रज तजि अन्त गयौ न कबहुँ,

निडर ह्वै आतंकिन में जीयौ।
निस्पृह सन्त सदाँ चिरजीवौ,
'शरन' मानमंदिर गहि लीयौ।।

****बाबा जनम बधाई होय, अरे होय मेरे भैया।****

होय मेरे भैया अरे होय मेरे भैया।।
माँ हेमेश्वरि कौ लाला,
भयौ जग कौ ये उजियाला;
ऐसौ अद्भुत बालक होय, अरे होय मेरे भैया।
दीदी के परम लाढ़ले,
चिंता रहती कुछ खा लें;
बाबा प्रेम–विरह में रोंय, अरे होय मेरे भैया।
बिना बताये भागे,
जंगल में रातों जागें;
राधे ही सहारौ होंय, अरे होय मेरे भैया।
करुणामयी ब्रज में बुलावैं,
बाबा रस डूबे आवैं;
निवास गह्वर कौ होय, अरे होय मेरे भैया।
सत्संग की सुधा पिवावैं,
कीर्तन उत्सव मनवावैं;
ब्रजमण्डल रसमय होय, अरे होय मेरे भैया।
भक्तजन नाचैं–गावैं,
ब्रज–गौमाता सुख पावैं;
ब्रज की सच्ची सेवा होय, अरे होय मेरे भैया।
ब्रजवासी बाबा को प्यारे,
बाबा ब्रज–प्राण अधारे;
श्रीकृपा से जानैं सोय, अरे होय मेरे भैया।

****सब तजि तव शरणागत आई,**
ब्रज वल्लभ बाबा महाराज।**

जिनने निज जन रास दिखायो,
जिनने लीला रसिक बनायो,
गोपिन भक्ति निसान बजायो,
जिनके चरनन की सेवा जन करैं छोड़ सब काज।
गह्वरवन राजैं श्री बाबा,
राधा–प्रेम प्रदायक बाबा,
सब पाप कटैं वो नाम श्रीबाबा,
श्रीगह्वरवन नित्य धाम बरसानो रसराज।
धन दौलत की आस नैंक ना,
विषय भोग सौं गरज नैंक ना,
मुक्ति हू की चाह नैंक ना,
श्रीभक्तिरस में देखैं न वे दुनिया का कोई राज।
ब्रजरस फैलायो है व्यापक,
सब जन के हैं प्रेम–प्रकाशक,
श्रीयुगलभक्तिरस–भाव प्रदायक,
मिथ्या विषय भोगन कूँ छोड़्यो कृपा करो महाराज।।

****अब तो ब्रज रस हिय सरसाओ,**
हमारे श्रीसद्गुरु भगवान्।**

सब सम्बन्धन छोड़ कै आई,
राधा रस की आस लगाई,
पल–पल में माया टकराई,
भवसागर की रैन अँधेरी डूब्यौ जाय जहान।
काम क्रोध की लहरें आवैं,
विविध ताप तापनि में जरावैं,
कबहूँ चैन तनक न पावैं,
उठ्यौ भभूड़ो मोहजाल कौ सजके अपने बान।
भाव भगति कछु मोमें नाहीं,
जाते श्याम ढरैं मो माहीं,
ताते विनय करैं सब पाहीं,
बहुत थकित भई हूँ गुरुवर बेर ते होय अब आन।
श्रीगुरु–चरण शरण में आई,
अति रसमय गह्वरवन पाई,
संतन्ह कृष्ण–कृपा बरसाई,
ब्रह्मा शिव तरसैं याको ह्याँ श्रीसखियन कौ मान।
नित्य विहार प्रेम कौ धामा,
अपने हाथ बनायौ श्यामा,
जासे परमप्रिय अभिरामा,
पाऊँ नित्य वास गह्वरवन करूँ रसिकन सम्मान।।

बाबाश्री की बाल–लीलाएँ

श्रीबाबामहाराज की 'दीदी' द्वारा बताई गईं बाबा के बचपन की कुछ घटनाएँ

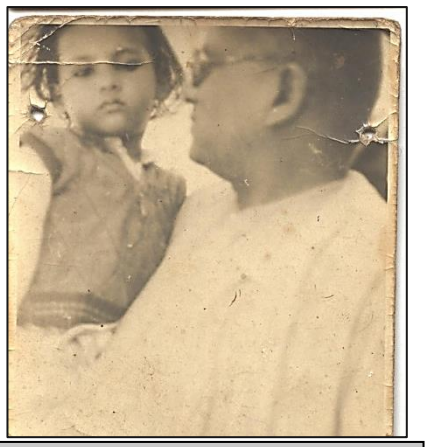

श्रीबाबा महाराज अपने चाचाश्री की गोद में

श्रीभगवान् की असीम अहैतुकी अनुकम्पा से सनातनधर्म के संरक्षण–संवर्द्धन के लिए श्रीरत्न–गर्भा भारतभूमि के आँचल में समय–समय पर संत–भक्त–महापुरुषों के अवतार होते रहते हैं, उसी परम पावनकारी श्रृंखला में एक परमाद्भुत विलक्षण बालक (बाबाश्री) के जन्म का तीर्थराज की धरा को सुमंगलमय सौभाग्य संप्राप्त हुआ, जिसकी संक्षित घटना का उल्लेख किया जा रहा है –

एक भक्त दम्पति बलदेव प्रसाद शुक्ल व हेमेश्वरी देवी प्रयागराज (इलाहाबाद) की पावन धरणी पर भजन–आराधनरत होकर निवास करते थे । शुक्लजी ज्योतिषविद्या के पारदर्शी ज्ञाता, शिव भक्त तथा एक बहुत बड़े राष्ट्रभक्त भी थे (जिन्होंने उस समय के नामी डाकू 'सुल्ताना' को पकड़ा था), आपको समाज सेवा से जब अवसर मिलता तो प्रयागराज में स्थित 'पंचकोशी समिति' में कीर्तन करने जाते और प्रत्येक शनिवार को अपने घर में वेदान्तमण्डली को एकत्रित कर शास्त्रोक्त चर्चा भी करते थे । वैसे तो परम भक्त दम्पति को कोई शारीरिक–मानसिक कष्ट नहीं था परन्तु प्रत्येक माँ–बाप का एक ही सपना रहता है कि कोई गुणवान पुत्र हो, ये भी पुत्र की प्राप्ति के लिए दुःखित थे, भाँति–भाँति के उपाय करने के बाद भी किसी पुत्र की प्राप्ति नहीं हुई; तब इन्होंने कोलकाता में तारकेश्वर पर जाकर पुत्र–प्राप्ति के लिए शिवाराधन किया परन्तु फिर भी इनकी गोद सूनी रही ।

तब शुक्ल भगवान् ने पुत्रेच्छा से रामेश्वरम् की यात्रा की, वहाँ जाकर शिवाराधन में तत्पर हो गए तथा अनुष्ठान पूर्ण कर वह सीलौन गए और वहाँ से शिवलिंग लेकर अपने गुरु–स्थान 'परमानन्द गिरि आश्रम, झूसी' में पहुँचे; वहाँ आँगन में एक छोटे–से शिवालय का निर्माण कर शिवलिंग को स्थापित कर आराधना में तल्लीन हो गए । कुछ समय पश्चात् भगवान् भोलेनाथ की महती कृपा से एक तेजस्वी पुत्ररत्न का प्राकट्य सन् १९३८ में तीर्थराज प्रयाग की वसुंधरा पर हुआ, जिसका जन्मोत्सव बड़ी धूम–धाम से १२ दिन तक होता रहा; माता–पिता महादेवजी के द्वारा दिए गए कृपाप्रसाद का बड़े प्रेम से लालन–पालन करने लगे ।

सामाजिक परम्परानुसार बालक का अन्नप्राशन–संस्कार हुआ, जिसमें इनके सामने विभिन्न प्रकार की वस्तुओं को रखकर इन्हें उल्टा लिटा दिया तो इन्होंने लौकिक वस्तुओं को देखा भी नहीं, इनकी दृष्टि अपने आराध्य (वाङ्मय स्वरूपा श्रीगीताजी) पर पड़ी और अपने हाथों से 'श्रीमद्भगवदगीता' को उठाकर अपने मुख में भर ली; यह दृश्य देखकर पुरोहितजी समझ नहीं पाये और बोले – अरे ! देखो, इसने गीता को झूठी कर दिया, परन्तु परम ज्योतिषी हमारे पिताजी ये देखकर हँस दिए और हँसकर कहते हैं कि लगता है आगे चलकर गीता पढ़ेगा, वह अपनी विद्या के बल से जानते थे कि यह बालक विरक्त होकर संसार में भक्ति का प्रकाश फैलाएगा;

बचपन से ही ये (रमेश) बहुत प्रतिभावान थे, गौरस इन्हें बड़ा रोचक लगता था (अपने आराध्य की आराध्या गौ माँ के दुग्ध में ऐसा लगाव क्यों न हो ?) ।

एक बार एक कसाई किसी गाय को ले जा रहा था, तो किसी ने शुक्लजी को बताया; वह अबिलम्ब वहाँ पहुँचे और उससे गाय को मुक्त करने की प्रार्थना करने लगे, उसके न मानने पर उस ज़माने के १० रुपए का मूल्य चुकाकर गाय को घर ले आए, इस नन्हे बालक ने १२ वर्ष तक उसी का दुग्ध पान किया । जब कभी गाय दूध

नहीं देती तो पड़ोस की एक ग्वालिन इनसे बड़ा प्रेम करती, उसने अपने घर पर इनके लिए एक विशेष गाय रख ली थी, उसका दूध लाकर वह इनको दिया करती थी। फिर ये धीरे–धीरे बड़े होते रहे, भोजन कम करते थे, ज्यादातर दूध ही पीते थे, हम बहुत जबर्दस्ती खाना खिलाएँ जब खाने बैठें, दिन भर में पाँच बार दूध पीते थे।

जब साढ़े चार साल के हुए तो वहीं इलाहाबाद में 'मदनमोहन बाग़' में भजन–संकीर्तन होता था तो समिति के सब लोग वहाँ गये थे, हम लोग भी गये थे तो सब बच्चे उसी बाग़ में खेल रहे थे, बड़े लोग हॉल में बैठकर कीर्तन कर रहे थे, 'रमेश' खेलने नहीं गये, ये चुपचाप अपने पिताजी के पास बैठे थे तो बार–बार मालवीयजी की इन्हीं पर दृष्टि जा रही थी कि ये लड़का यहीं बैठा है खेलने नहीं जा रहा है और बड़ा शान्त है। जब कीर्तन हो गया, उसके बाद मालवीयजी ने पिताजी को बुलाकर कहा कि शुक्लाजी ! ये लड़का आपका है, वे बोले – 'हाँ ...!' उन्होंने 'रमेश' से कहा – बेटा यहाँ आओ... इन्हें अपनी गोद में बैठा लिया और पूछा – तुम्हें भजन करना आता है... बोले – 'हाँ, आता है ...और भजन गाने लगे –

"शिव– शिव ! शम्भु !! हर–हर महादेव !!!"

मालवीयजी बोले – 'शुक्लाजी ! ये लड़का तो अलौकिक है, लगता है 'गृहस्थ' में नहीं जायेगा। ' पिताजी बोले – 'हाँ, लगता तो ऐसा ही है। ' हमें (दीदीजी को) ऐसा लगता है कि पिताजी शायद जानते थे क्योंकि एक बार हमारी रामबाग के पास जमीन थी, हमारे पिताजी ने वह जमीन किसी को दे दिया, पिताजी कुछ दानी प्रकृति के थे। माताजी नाराज हो गयीं कि तुम ऐसे किसी को भी कुछ भी दे देते हो, तुम नहीं सोचते कि तुम्हें एक लड़का हो गया है। पिताजी ने कहा कि लड़के की चिन्ता नहीं करो, उसके आगे–पीछे सब लक्ष्मी दौड़ेगी, उसकी चिन्ता मत करो, अपना खुद कर लेगा सब।

इसके बाद ९ फरवरी सन् १९४५ को पिताजी का देहान्त हो गया ... उसके बाद ये पढ़ने में तो तेज थे ही, हमारे तीन मकान थे, उसी का किराया आता था, उसी से गुजर होता था। जब ये ८ साल के हुए तो इनका जनेऊ संस्कार भी हो गया, इन्होंने जनेऊ संस्कार के नियमों का बड़े विधि–विधान से पालन शुरू कर दिया। लोगों को बड़ा आश्चर्य होता था कि इतना छोटा लड़का गायत्री जप कर रहा है। उसके बाद हमने सोचा कि इनको संगीत की शिक्षा दी जाए, उस समय इनकी उम्र ८ साल की थी। तो जब हम संगीत सिखाते – देखा कि ये बहुत जल्दी किसी भी चीज को पकड़ लेते और काफी जल्दी सीखने लग गए तो हमने अपने गुरुजनों से इनका परिचय करा दिया। हम 'संगीत समिति' में संगीत सीखते थे तो उन लोगों से परिचय कराकर इनका ऐडमीशन वहाँ करा दिया; ये स्कूल में पढ़ते भी थे और शाम को संगीत भी सीखते थे और संगीत में तो इन्होंने कमाल कर दिया; 'संगीत विभाग' में टॉप कर लिया, ये वहाँ गये नहीं, सरकार इन्हें 'स्वर्ण पदक' देती; बहुत दिनों तक बड़े–बड़े अक्षरों में वहाँ इनका नाम लिखा रहा। जब ये बी.ए. में थे तो कहीं चित्रकूट भाग जाएँ जंगलों में, अन्य कहीं के जंगलों में भाग जाएँ, इस तरह से भागते ही रहे।

'रमेश' की छोटेपन से ही बहुत अच्छी समझ (सूझ–बूझ) रही है; हमारा लड़का 'पीयूष' बचपन में बहुत शैतान था, एकबार 'पीयूष' फाटक पर चढ़ गया, वहाँ भाला था, (न जाने पेड़ पर चढ़कर गिरा, क्या हुआ ?) भाला उसके माथे में घुस गया, 'रमेश' वहीं गेंद खेल रहे थे, ये उस समय दस–ग्यारह साल के होंगे। लोगों ने रमेश से कहा कि तुम्हारे भाँजे को क्या हुआ ? देखो–देखो भाले पर लटक रहा है। इन्होंने जाने कैसे चढ़कर एकदम ऐसे निकाला कि बिल्कुल छति नहीं हुई और यह खून से लथपथ हो गए और भागे... रास्ते में घर पड़ता था... बोले – दीदी ! पीयूष को लेकर जा रहे हैं ... हम झाँके ...खून से लथपथ 'रमेश' लेकिन रुके नहीं ...हम बहुत घबड़ा गए... ये रुका नहीं क्योंकि रुकेंगे तो ज्यादा खून निकल जाएगा ... सीधे डॉक्टर के घर जाकर पहुँचे... डॉक्टर का घर खुलवाकर टाँका

लगवाया, फिर एक–दो घंटे में घर आये। तब तक हम बड़े परेशान रहे ... वहाँ से लौटकर 'रमेश' बोले कि दीदी ! अगर हम रुकते तो पीयूष बचता न... । तो 'रमेश' इतने साहसी भी थे।

जब 'रमेश' छोटे–से थे तो 'हाथा' में एक हमारा शिवजी का मंदिर था, हम जहाँ रहते थे; वहाँ एक पीपल का पेड़ था, उसके नीचे कुँआ था, तो ये दोपहर को जब सब सो जाएँ तो चुपचाप भाग जाते और बाल्टी से जल खींचकर शिवजी पर चढ़ाने लग जाते थे । एक नौकरानी थी 'सुब्बा' वह इनको बहुत प्यार करती थी, खिलाती–पिलाती, नहलाती–धुलाती थी; उसको ये भी माँ की तरह प्यार करते । उसे अगर कोई डाट दे या फटकार दे, वह रोने लग जाए तो ये भी बहुत बुरा मानते ।

हमको (दीदीजी को) तो इतना प्यार करते थे कि जब सुब्बा की शादी हो गई, तो छोटेलाल नौकर आया इनको खिलाने के लिए तो ये चिल्लाते 'दीदी ! दीदी !!' इतना अधिक हमसे स्नेह करते, अगर हमको माँ मार दे या डाँट दे तो हम तो कम रोयें, ये ज्यादा रोते थे। जब हमारी शादी होकर गई तो हम वहाँ अपने भाई के लिए रोया करते थे। इसके बाद हम यहीं आकर चाचा के यहाँ रहने लगे और 'रमेश' की देखभाल करने लगे; हमारे पति प्रिंसिपल थे तो इनकी पढ़ाई–लिखाई पर ध्यान देने लगे । ये पढ़ने में अच्छे थे और ये रौद्र–रस की कविताएँ बहुत अच्छी कहते थे। जितने भी कम्पटीशन होते, उनमें भाग लेते और सबमें शील्ड जीतकर आते थे। all u.p. competition लखनऊ में हुआ, वहाँ भी शील्ड जीतकर आये, ड्रामा में भी भाग लेते थे, कुछ हमारे यहाँ खानदानी संगीत में भी रुचि थी। हमारे बाबा भी अच्छे सितारिया थे। पिताजी को भी अच्छा संगीत आता था, कुछ खून में भी था।

एकबार डी.बी. पलुस्कर जी आये थे 'संगीत समिति' में, म्यूजिक एकैडिमी में हम लोगों के यहाँ जो consilience होती थी, उसमें बड़े–बड़े अच्छे गायक, अच्छे वादक आते थे; तो डी.बी. पलुस्कर के साथ इन्होंने रात में संगत किया, संगत में बीच–बीच में ताल बगैरह भी लेनी पड़ती थी, रात भर इन्होंने ताल लिया। उन्होंने परिचय पूछा – बेटा, तुम्हारा परिचय; तो इन्होंने सब बताया, उन्होंने कहा कि तुमको हम अपने स्कूल में फ्री शिक्षा देंगे और खाने–पीने का इंतजाम हमारी तरफ से होगा, तुम बॉम्बे (मुम्बई) चलो हमारे साथ, तुम्हारे अन्दर अद्भुत कला है, तुम बहुत बड़े कलाकार बनोगे। तुम अपनी माँ से आज्ञा ले आओ। ये माँ के पास पूछने आये, 'माँ' ने मना कर दिया।

हमारी दूसरी माँ की दो लड़की थीं यानि हमारी दो बहनें थीं (जो दो छोटे–मोटे राजा थे, उनके यहाँ ब्याही थीं), वे 'रमेश' को बहुत प्यार करती थीं। तो ये अक्सर वहाँ जाते थे, वहाँ जाकर ये हारमोनियम से भजन गाते थे। जीजा जी का वहाँ दरबार लगता था, ये वहाँ बैठ जाएँ और ऐसा सुन्दर रसमय गाते थे कि इनके भावमय गान को सुनकर वहाँ के बहुत लोग प्रभावित होते थे। वहाँ हर छुट्टी में हम और रमेश जरूर जाते थे, हमलोगों को बड़ी बहन बहुत प्रेम करती थीं।

हमारी ससुराल में भी जब ये जाते थे तो वहाँ भी सब लोग जानते थे कि ये बड़ा अच्छा गाते हैं और जाकर सबको भजन सुनाते। भजन सुनाते–सुनाते रोने लगते, तो वहाँ की लड़कियाँ हमसे कहतीं कि भाभी ! आपका भाई साधु हो गया है। इनके आचरण देखकर सभी ने कहा कि इनकी जल्दी शादी करवा दो, कहीं ये साधु न हो जावें। जब इनकी शादी की चर्चा सुनी तो एक ब्राह्मण आया, उसने कहा कि हम पैसा नहीं दे सकते हैं लेकिन हमारी लड़की देख लो, आपको पैसा तो कहीं भी मिल जाएगा परन्तु ऐसी लड़की नहीं मिलेगी। हमने सोचा – चलो देख लें, जब देखने गये तो सच में लड़की गुलाब के फूल जैसी अति सुन्दर थी, घर में तो उसके छप्पर था और आँगन था आँगन के ऊपर छत पर कोठरी थी, उसमें बैठी हुई थी; बिल्कुल ऐसा लग रहा था जैसे कोई देवी बैठी हो, बहुत सुन्दर थी, आठवीं कक्षा में पढ़ती थी, बारह–तेरह साल की रही होगी; लेकिन हम तो तैयार थे कि चलो इन्हें बन्धन बाँध दें, हमने 'रमेश' से कहा कि तुम लड़की देख लो, बड़ी अच्छी है। ये बोले

– हम नहीं देखते, तमाम लड़कियाँ सड़कों पर घूमती रहती हैं। तो इन्होंने शादी करने से तुरन्त इन्कार कर दिया; ऐसे ही विरक्त रहे।

जब 'रमेश' यूनीवर्सिटी में पढ़ते थे, तो जहाँ कहीं भी भजन होता था, वहाँ निकल जाते थे। रात को ये यमुनाजी के किनारे बलुआ घाट पर बैठते थे, वहाँ बैठकर राधारानी का चिंतन करते थे, भाव में सोचते कि कालिंदी 'राधारानी' के चरण छूकर आ रही है, उसको देखकर रात भर रोते, पद गाते रहते थे। हमलोग परेशान होकर ढूँढ़ा करते थे कि 'रमेश' कहाँ हैं–कहाँ हैं ? इन्होंने हमलोगों को बहुत रुलाया, इनके वियोग में बहुत व्याकुल रहे ...।

एक इनके बचपन के मित्र थे विश्वनाथ पाण्डेय, वे बड़े अच्छे सज्जन व बड़े अच्छे भक्त थे, वह भी चाहते थे कि हम रिटार होकर (अंतिम समय में) यहाँ रहेंगे लेकिन पहले ही ख़त्म हो गए। 'रमेश' की भजन–मण्डली थी, जिनके साथ खूब कीर्तन करते थे। जब ये तीन साल के थे तो हम रामेश्वरम् गये थे तो वहाँ कलकत्ते में मोर थे, हम इनको मोर के पास लेकर जाएँ, मोर देखकर ये बहुत खुश हो जाते, पक्षियों से इनका प्रेम था।

श्रीकृपालुजीमहाराज का एक सम्बन्धी (साला) था, वह ट्यूशन पढ़ाता था तो ये वहाँ मनगढ़ जाने लगे और वहाँ ये अपना भाषण बोलते थे (इन्हें बोलने का अच्छा अभ्यास था), तो ये बहुत सारे पद बनाकर और प्रवचन–पुस्तकों से सत्संग–सार छाँट–छाँटकर कृपालुजी को देते थे। 'रमेश' जब इलाहाबाद में रहते थे, तो बड़े–बड़े संतों के यहाँ बहुत ज्यादा जाते थे। हमारे पिताजी का संतों से बहुत अधिक प्रेम था। कोई न कोई संत हमारे यहाँ आते रहते थे। एक तो ऐसे संतजी आते थे जो अपने हाँथ से नहीं खाते थे, उनको खिलाना पड़ता था। उनको हमारे पिताजी ढूँढकर पकड़ कर ले आयें, हमारी अम्मा चिल्लाएँ भी, तो उनको अपने हाथ से हम खिलाते थे। उनसे हमने पूछा था कि हम कौन हैं ? हम कहाँ से आये ? हम यही प्रश्न उनसे प्रायः करती थीं, उन्होंने हमारे पिताजी से कहा – ये लड़की आपकी एक दिन अवश्य विरक्त हो जायेगी।

प्रभुदत्त ब्रह्मचारीजी थे, हमलोग सभी उनके यहाँ जाते थे। हमारी माताजी के गुरु परमानन्द गिरी थे, उनकी कृपा से ही ब्रह्मचारीजी का आश्रम था तो उनके यहाँ हमलोग जाते थे; वहाँ अखण्ड संकीर्तन होता था – **"श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे, हे नाथ नारायण वासुदेवाय।"**

प्रतिदिन समिति में संकीर्तन होता था, हमलोग रोज जाते थे; वहाँ से जो प्रसाद मिलता था, उसे हम मुट्ठी में लेकर चले आवें, हम नहीं खाते थे यह सोचकर कि 'रमेश' को देंगे, तब ये छोटे एक साल के थे, ये तो अपने घर में माँ के पास सोते रहते; जब हम प्रसाद लेकर इनके पास आते तो अम्मा चिल्लाएँ सो गया है, उठाना नहीं; हम वहीं खड़े रहें तो ये तुरन्त ही उठकर बैठ जाएँ।

'रमेश' का गाय से बहुत प्रेम था, गैया के छोटे बछड़े होते तो उनको चूमते थे, खिलाते थे, गाय को सहलाते थे; गाय के प्रति इनका प्रेम बहुत रहा, हमेशा से हमारी माँ स्वयं सेवा करती थीं और दुहती थीं।

हमारे पिताजी बहुत बड़े वेदांती थे तो हमारे चाचा के यहाँ वेदान्त की मण्डली बैठती थी, अच्छी बातें होती थीं तो हम सब लोग बच्चे वहाँ अवश्य बैठते ही थे।

एक बार ये चित्रकूट किसी बरात में गये और वहाँ से जंगल में भाग गये; बारात पहले तीन–चार दिन तक रुकती थी, अब बराती सब परेशान कि कहाँ गया ये लड़का ? जंगल में बच गये, नहीं तो शेर खा लेते; तो ऐसे इन्होंने बहुत तप किया।

एक बार यह ब्रज आने के लिए घर से भागे, राधाकृष्ण के प्रेम की धुन सवार हुई, पैसा आदि नहीं था इनके पास तो रास्ते में T.T.I. ने पकड़ लिया तो जेल गये, मुकदमा पेश हुआ तो जज ने पूछा – इन्होंने सब सच–सच बता दिया, हम ब्रज जायेंगे, पैसा हमारे पास है नहीं लेकिन हमें ब्रज में जाना है। जज को समझ में आ गया कि ये लड़का सच कह रहा है, जज बोला – इसको छोड़ दो। फिर यह वहाँ से भागे और सीधे ब्रज में बरसाने आ गये ...।

पारमार्थिक–पथ ही परम सत्य

श्रीबाबामहाराज द्वारा अपनी 'माताजी' को लिखे गए पत्र से संकलित

अम्मा, प्रणाम।

तुमको बहुत दुःख है, यह मैं मानता हूँ; क्योंकि संसार में केवल माँ का ही प्रेम सर्वोत्कृष्ट है। हम आज तक के जीवन में बहुत अनुभव पश्चात् लिख रहे हैं। हमने देखा जिसके लिए यदि कोई गला काट कर भी दे, वह भी धोखा ही देता है। यह प्रतिपल हम आज भी अनुभव कर रहे हैं। यही कारण है कि मैं एक स्थान पर रह नहीं पाता। कभी गह्वरवन, कभी मानमंदिर, कभी कहीं। क्योंकि जहाँ भी रहता हूँ सर्वत्र कहीं न कहीं कपट, झूठ, स्वार्थ मिलता है। सच्चा स्नेही व्यक्ति आज तक न मिला। अपनी इच्छा, स्वार्थ एवं रुचि का खून करके यदि दूसरे की रुचि, स्वार्थ रक्खो तो वह प्रसन्न रहेगा एवं स्नेह भी दिखाएगा और यदि बहिरंग व्यवहार से उसकी रुचि–पूर्ति न हुई तो कपट रखेगा। अतः केवल माँ ही स्नेह कर सकती है। मुझे तुम सब की याद आती है और ऐसा विश्वास है कि जितना मैं स्नेह तुम सबसे करता हूँ उतना तुम सब नहीं। हम चैतन्य चरितावली (१) में महाप्रभु का चांचल्य पढ़ रहे थे तो पीयूष की याद आई। मैंने बचपन में पढ़ाते समय कभी–कभी उसे मारा भी था, इसका इतना आज पश्चाताप होता है कि अपने हाथ को मैंने पृथ्वी पर पटक दिया। अब यदि हमारे सामने कोई किसी को मारता है तो हम देख नहीं सकते। हाँ, तो मेरे स्नेह में कदाचित् विवेक–सा है। और फिर मैं सांसारिक दिखावेपन से इतना ऊबा हूँ कि पत्रादि द्वारा शब्दाडम्बर अच्छा नहीं लगता। दीदीजी ने कोई पत्र नहीं लिखा, उनका नियन्त्रण एवं गम्भीरता अच्छी लगी; किन्तु क्या उनके पत्र न लिखने से हमारा स्नेह घट गया ? बढ़ गया है। मैं तुम सबमें उनकी अधिक याद करता हूँ और चाहता भी हूँ कि वे (तुम सबसे जल्दी हो) कल्याण–पथ पर चढ़ें। यही कारण है कि प्रत्येक पत्र में उनके लिए कुछ लिख देता हूँ। यह पत्र मैं बहुत सोच कर लिख रहा हूँ, खूब सोच–समझकर पढ़ना। मास्टर साहब (दीदीजी के पतिदेव) का पत्र आया था, उसमें तुम्हारा हाल पूछा था। अब तुमको ही इस बात का निर्णय करना है – तुम्हें दुःख होता है, अतः तुम जो कहोगी वही हम करेंगे; यह विश्वास रखो, चाहे हमारा परमार्थ नष्ट हो जाए। कई रास्ते हैं, मैं लिखता हूँ, निर्णय तुम लिखकर भेजो। (१) प्रथम तो यह है कि हम तुम्हारे पास रहें; जब तक जीवित रहो, सेवा करें। तुम्हारे जीविकार्थ थोड़ा बहुत कुछ उद्यम भी करें। तुम्हारी मृत्यु के उपरान्त फिर इसी प्रकार हो जाएँ; किन्तु इससे थोड़े दिन तक तुमको तो शारीरिक लाभ होगा किन्तु पारमार्थिक हानि होगी; हानि इसलिए कि हमारी भी गति मन्द होगी और हमारी पारमार्थिक उन्नति से तुमको जो लाभ होता, वह रुक जायेगा। अरे ! तुम तो बिना कुछ किये ही पारमार्थिक लाभ उठा सकती हो दूसरे मार्ग (सर्वात्मसमर्पण से भक्ति) के द्वारा, (२) दूसरा मार्ग यह है कि तुम यह समझो कि हमने प्रभु की सेवा में एक खिला हुआ पुष्प चढ़ाया है। मुरझाया हुआ तो सभी देते हैं। यद्यपि तुमने क्या चढ़ाया, मैं स्वयं चला आया और मैं भी क्या आया; उन्होंने स्वयं खींचा। किन्तु तुम यदि यह स्वयं भाव रखोगी कि हमने एक सुन्दर पुष्प प्रभु की सेवा में चढ़ा दिया; यदि इतना त्याग कर सको तो उससे तुम्हारा एवं मेरा क्या लाभ होगा, यह कहा नहीं जा सकता। तुमने पुष्प सजाया (पढ़ाया–लिखाया आदि) किन्तु खिलने पर स्वयं न लेकर यदि सच्ची भावना से ईश्वर की कृपा समझते हुए प्रभु को समर्पण प्रसन्नतापूर्वक करोगी तो प्रभु कितने प्रसन्न होंगे !!! "त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यं .....।।" मोरध्वज, ध्रुव आदि उपाख्यान में सुनीति आदि का परम कल्याण हुआ। हमारा तात्पर्य यह नहीं कि हम ध्रुव हैं। हम तो बड़े नीच हैं क्योंकि न मातृ–सेवा की, न प्रभु–सेवा। किन्तु तुम यदि हमें समर्पण करोगी तो तुम्हारा परम कल्याण भगवत्कृपा से होगा और तुम्हारे ही अन्तरात्मा से हमारा भी; प्रश्न है भाव का। वस्तु खराब ही क्यों न हो (जूठे बेर, तंदुल, गोबर, जूठा साग आदि)

किन्तु भाव शुद्ध अवश्य होना चाहिए। अतः हम खराब हों या अच्छे, इसका प्रश्न नहीं; फिर तो जिसके हाथ में सर्वस्व सौंपा, वह अन्ततोगत्वा सब सम्हालता ही है। अरे ! 'दुःख' तो कसौटी है, इसमें खरा उतरना ही साधना एवं सिद्धि है। दुःख में अधिक प्रसन्न होना एवं भगवत्कृपा समझना सबसे बड़ी साधना है। समस्त साधनाओं का यही फल है कि प्रत्येक दशा में ईश्वर की कृपा का अनुभव हो। और यदि दुःख में हमने थोड़ा बहुत भी मिनमिनापन एवं भुनभुनाहट किया तो ठीक नहीं। प्रभु निर्दय है, सुनता नहीं, बहरा है आदि नीचता से भरी हुई बातें करके दुःखी होने से अपनी सारी साधना नष्ट हुई, भगवत्कृपा का अनुभव न किया, उससे लाभ न लिया (अर्थात् दुःख में अधिक प्रसन्न हो, उनका स्मरण न किया) तो यह परम दुर्भाग्य है। अरे ! अपने पिछले कुकृत्यों का फल दुःख मिला तो भगवान् को क्यों निर्दय बनायें ? हम तो दुःख जान–जान चाहते हैं। बाबाजी लोग जाड़े को ठिठुर–ठिठुर कर काटते हैं, कभी भूखे रहते हैं; जंगल में चोर, सर्प, जानवर आदि के दुःख को सह–सहकर भी दुःख चाहते हैं। कई वृद्ध महात्मा हर साल जाड़े में मर जाते हैं, वे अपने प्राणों का बलिदान चढ़ा देते हैं, फिर भी किसी से कुछ नहीं लेते। अतः दूसरा परम लाभकारक यह मार्ग है कि तुम यही संकल्प कर लो कि हमने सब कुछ ठाकुरजी का आरती में चढ़ा दिया (समस्त परिवार, धन, मान, कुल–लाज, अपना तन–मन, आत्मा आदि)। अब चढ़ाए हुए वस्तु पर तुम्हारा अधिकार न होगा; उस दिन तुम सनाथ होगी। जब तक पति, पुत्र का आश्रय रहता है तब तक जीव अनाथ है; जब पति, पुत्रादि का आश्रय त्याग श्रीकृष्णाश्रय रहता है तब सनाथ होता है, बीच में दुःख की कसौटी है। जब तक द्रौपदी को पति आदि का आश्रय रहा, वह अनाथ रही; जब दाँतों से दबी साड़ी छूटती है, 'हा कृष्ण' कह श्रीकृष्ण–आश्रय लेती है, तब सनाथ होती है। बोलो ...अंतिम निर्णय लिखकर भेजो। यदि अनाथ होना हो तो हमको बुला लो, हम अपना परमार्थ जलाकर आ जाने को तैयार हैं, नौकरी कर जब तक जीवित रहोगी, सेवा करेंगे; किन्तु तब भी अनाथ रहोगी और मरने के बाद अनन्तकाल का भविष्य भी उतना अच्छा नहीं हो पावेगा। और यदि सनाथ होना चाहती हो, हमें भेंट दे दो श्रीकृष्ण को, सब कुछ दे दो; फिर तुम्हारे दुःख के आँसू श्रीकृष्ण को तुम्हारा नाथ बनायेंगे और तुम श्रीकृष्ण का आश्रय लेकर अनन्तकाल तक सनाथ हो जाओगी, फिर तुमको हमारे बारे में चिंता न करनी होगी। फिर हम चाहें मरें या रहें, महात्मा बने या सांसारिक कीड़े; इसके बारे में तुम उदासीन होने की साधना करना। क्योंकि हमने न्यौछावर कर दिया, अर्पण कर दिया; अब उस पर अधिकार श्रीकृष्णाधिकार है, वे बनायें या बिगाड़ें। हम नित्य पुष्प चढ़ाते हैं, चढ़ाकर लौट आते हैं, फिर उस पुष्प का क्या होता है, यह नहीं जानते। हम यह विश्वास रखें कि हमारे पुष्प को ठाकुरजी ने अवश्य सूँघा होगा। (फिर पत्रादि ठाकुरजी को लिखना, सम्बन्ध उनसे ही।) तुम भी उनकी ओर लगो। हम एक तरफ लगना चाहते हैं। या तो अपना एवं मेरा पारमार्थिक लाभ नष्ट करके हमको बुला लो, हमको पीछे संसार में 'ब्रजवास छुड़ा' लौटाकर अपनी सेवा में लगा लो या श्रीकृष्ण की सेवा में लगा दो; एक निर्णय करो, हम तैयार बैठे हैं तुम्हारे उत्तर की प्रतीक्षा में। फिर श्रीकृष्ण की सेवा में लगाने पर यदि हम जायें तो भी एक राजपूत क्षत्राणी की भाँति पति + पुत्र को लौटालकर युद्ध में अर्थात् सेवा में भेजना होगा। पत्र की कौन कहे ? हम यदि पत्र भेजें या वहाँ आयें तब भी तुम हमसे मत बोलना, यह होगी सच्ची सेवा। अरे ! अनन्त जन्मों में दुःख सहा, यदि एक जन्म में प्रसन्नतापूर्वक हिम्मत करके सह लिया तो बेड़ा पार। 'हम क्या करें, माँ का हृदय है' यह सब गलत है। मनुष्य यदि साधना करे तो सब कर सकता है। एक पुत्र की आसक्ति पर लात मारना तो मामूली बात है। मोरध्वज आदि पेट से महात्मा नहीं हुए। हिम्मत एवं अभ्यास से सब कुछ मिल जाता है, श्रीकृष्ण तक मिलते हैं। अकर्मण्यता व निराशा से न चाहने पर भी यमराज की प्राप्ति अनन्तकाल तक होती है। मनुष्य कर्म करने में स्वतन्त्र है, वह सब कुछ अभ्यास से कर सकता है; ऐसा भगवान् ने गीताजी में कहा है – 'अभ्यासेन तु कौन्तेय'। यदि ये दोनों मार्ग न पसन्द हों तो एक और युक्ति है कि तुम 'ब्रज' में चली आयो, यहाँ सब प्रबन्ध निश्चय होगा; किन्तु इलाहाबाद (प्रयागराज) बिल्कुल छोड़ना होगा, जिस दिन इच्छा हो आ सकती हो। सृष्टि में दो ही चीजें हैं – एक भगवान् और दूसरा संसार। श्रीभगवान् का आश्रय लेने वाला सदा कुशल से रहता हैं, हम तो यहाँ (गह्वरवन में) अति आनन्द से रह रहे हैं ...।

परम वात्सल्यमयी 'श्रीराधारानी'

बाबाश्री द्वारा पद–व्याख्या (१९ दिसम्बर, २०२२)

श्रीराधे मोहि न बिसारो ।
जैसे शिशु नहिं जानत मातहि, तदपि मात तेहि पाल्यो ॥
पंखहीन चिड़िया को बच्चा, चोंचन देती चारो ।
गौ बच्छा को चाट–चाट के, सबही मल को टारो ॥
दूध पिलावति रक्षा करती, जीवन की आधारो ।
तुम हो वत्सलता की मूरत, यही आशा उर धारो ॥

'जैसे शिशु नहिं जानत मातहि, तदपि मात तेहि पाल्यो ॥'

हे राधे ! आप जैसी करुणामयी न कोई थी, न है और होगी तो पता नहीं। आपकी करुणा से यह सारा देश पल रहा है, आप कृपा करो और करुणा करती जाओ, हम भारतवासी आपकी करुणा में पलें, पोसें, बढ़ें और जगत्–गुरु (संसार के गुरु) बन जाएँ।

हे दीनपालनी श्रीराधे ! हे दीनशरण्या श्रीराधे !! श्रीराधिके ! आप भूल जाओगी तो इस संसार में कौन है, हम दीन–दुखियों की सुधि लेने वाला। कोई गाय अपने बछड़े को वन में भूल जाए तो उसकी कौन सुधि लेगा, कौन उसकी सुनेगा, जंगल में बड़े–बड़े जानवर हैं, उनके बीच में कौन उसकी रक्षा करेगा, कौन उसे पालेगा, कौन उसे पोसेगा, कोई नहीं है इस भयानक अरण्य में। हे राधेरानी ! आपकी करुणा से ही हम लोग पल रहे हैं, पोसे जा रहे हैं, आपकी दया से हम लोग जीवित हैं, आपकी दया से हम लोग श्वास ले रहे हैं, आप भूलोगी तो इस संसार में कौन है ? 'मोहे न बिसारो राधे, जैसे शिशु नहिं जानत मातहि' एक शिशु अपनी माँ को नहीं जानता है, न जानता है, न पहचानता है, माँ को बुलाने की भी बुद्धि उसमें नहीं है, औं–औं करके केवल अपनी मौन भाषा में माता को बुलाता है और उसकी करुण पुकार को सुनकर माँ दौड़ आती है। श्रीराधा जगज्जननी हैं, उनके जैसी माँ संसार में न थी, न है। ऐसी माँ कौन है संसार में, एक भी उदाहरण नहीं है, चौरासी लाख योनियों में एक भी उदाहरण नहीं है। केवल गाय ही है क्योंकि जब उसका बछड़ा मल–मूत्र से लिपटा हुआ पैदा होता है, उसके शरीर पर अंतड़ियों के अनेक विकार होते हैं और उसके समस्त विकारों को गाय अपनी जीभ से चाटकर साफ़ करती है। बछड़ा जब पैदा होता है तो गाय उसको चाटने लगती है, बच्चे के समस्त विकारों को चाट–चाटकर दूर कर देती है और ऐसा करने पर उसके सामने ही बछड़ा उछलने–कूदने लगता है और गैया मैया केवल अपनी जीभ से उसे चाटती रहती है, उसका यही एक लाड़ है, यही प्यार है। वह अपने बच्चे के समस्त विकारों को स्वयं ही खा जाती है, स्वयं चाट लेती है, चौरासी लाख योनियों में ऐसी कोई माँ न थी, न है और होगी भी तो शायद गैया मैया ही होगी। इसलिए हे राधे ! आप ऐसी करुणामयी हैं, जगज्जननी हैं, संसार का पालन करने वाली हैं। आप कृपा करो, हमको कभी मत भूलो और हम आपके आश्रित रहें।

राधे ! राधे !! जननी !!! जननी !!!!

सहजोबाई जैसी गुरुभक्त अभी तक कोई नहीं हुई हैं, उनका गुरुभक्ति के बारे में यह अनुपम पद है – **'हम बालक तुम माँय हमारी।'** इस पद में उन्होंने गुरुदेव को भी वात्सल्यमयी माता के रूप में सम्बोधित किया है और स्वयं को शिशु के रूप में प्रस्तुत करते हुए गुरुमाता का अपने आश्रित शिष्य के प्रति उसके पालन–पोषण और रक्षण का मार्मिक चित्रण किया है।

जब देवताओं पर आपत्ति पड़ी तो उन्होंने भी इसी भाव से भगवान् को बुलाया था। एक बार पूर्व जन्म के अनन्य भगवद्भक्त राजा चित्रकेतु का जगदम्बा पार्वतीजी के शाप से अत्यधिक शक्तिशाली दैत्य वृत्रासुर के रूप में पुनर्जन्म हुआ। अग्निकुण्ड से अति विशाल एवं भयानक रूप से प्रकट होते ही उसने देवताओं पर भीषण प्रहार करना आरम्भ कर दिया। उसके अत्याचारों से पीड़ित होकर देवताओं ने भगवान् के शरणागत होकर अपनी रक्षा की प्रार्थना की तो भगवान् ने उसके वध के लिए दधीचि मुनि की अस्थियों से बने वज्र को वृत्रासुर के वध हेतु एकमात्र अमोघ अस्त्र बताया एवं देवराज इन्द्र को उसके

साथ युद्ध करने की आज्ञा दी। भगवान् की आज्ञा से इन्द्र वज्र हाथ में लेकर युद्धभूमि में दुर्दान्त दैत्य वृत्रासुर से लड़ने के लिए आ डटे। वृत्रासुर ने युद्ध में इन्द्र के विरुद्ध अपने अजेय पराक्रम एवं अद्भुत भगवद्भक्ति का प्रदर्शन किया। असुर बनने पर भी वृत्रासुर की पूर्व जन्म की भक्ति समाप्त नहीं हुई थी, बल्कि इस जन्म में तो उसकी भक्ति और अधिक परिपक्व हो चुकी थी। युद्धभूमि में उसके शौर्य एवं प्रेमलक्षणा भक्ति को देखकर देवराज भी अपने को नगण्य मानकर उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने तथा स्वयं की निकृष्ट भोगपरायणता के कारण अपने को धिक्कारने के लिए बाध्य हो गये। जैसा कि कुरुक्षेत्र की धर्मभूमि में युद्ध प्रारम्भ होने के समय गीता का उपदेश करते हुए भगवान् ने अर्जुन से कहा – **'तस्मात् सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।** (श्रीगीताजी ८/७) क्षत्रिय धर्म का पालन करते हुए निरन्तर युद्ध भी कर एवं सभी समय सतत् मेरा स्मरण भी कर।' भगवान् का यह आदेश केवल अर्जुन के लिए ही नहीं अपितु समस्त मानव जाति के लिए है परन्तु यह भगवद् आज्ञा सभी को अत्यन्त अव्यवहारिक प्रतीत होती है। लोग सोचते हैं कि युद्ध जैसे भयानक कर्म को करते समय कोई भगवत्स्मरण भी कैसे कर सकता है ? परन्तु परम भगवद्भक्त वृत्रासुर को अपनी विशिष्ट भक्ति के प्रभाव से देवराज इन्द्र के साथ भीषण युद्ध करते हुए भी भगवद् स्मरण ही नहीं वरन् भगवद् दर्शन भी हो रहा था। इन्द्र के साथ युद्ध करते समय अपनी अद्भुत पराभक्ति से द्रवीभूत वृत्रासुर ने जो श्लोक कहे थे, उन्हें महाप्रभु वल्लभाचार्यजी ने अपने पुष्टि सम्प्रदाय के मूलभूत सिद्धान्त के रूप में ग्रहण करते हुए श्रीमद्भागवत पर अपनी टीका सुबोधिनी में विस्तार से उसकी व्याख्या की है। इन्द्र जैसे शत्रु के साथ भयंकर युद्ध को करते समय भी परम वीर एवं विशिष्ट भक्त वृत्रासुर के हृदय में भगवत्प्रेम के आवेश से उत्कट विरह का अनुभव हो रहा था, अतः उसने कहा – **अजातपक्षा इव मातरं खगाः**
स्तन्यं यथा वत्सतराः क्षुधार्ताः।
प्रियं प्रियेव व्युषितं विषण्णा
मनोऽरविन्दाक्ष दिदृक्षते त्वाम्॥
(श्रीभगवतजी ६/११/२६)

'अजातपक्षा इव मातरं खगाः' एक वन में एक वृक्ष पर कुछ पक्षी बैठे थे, सद्यः जातः – उसी वृक्ष पर घोंसले में एक चिड़िया ने एक बच्चा पैदा किया था, उसके पंख नहीं निकले थे और चिड़िया उस शिशु को खिलाने हेतु चुग्गा चुगने के लिए उड़कर जंगल में चली गयी। वन में पक्षियों के बीच इस चिड़िया को किसी ने मार दिया या पकड़ लिया। संध्या को वह नहीं लौटी तो चिड़िया का बच्चा बार-बार अपने घोंसले के बाहर चोंच निकालकर देखता है कि मेरी माँ अब तक नहीं लौटी, कहाँ है ? उसके पंख नहीं उगे हैं, उड़ नहीं सकता है, घोंसले के बाहर केवल चोंच निकालकर चों-चों करता हुआ देखता है, चिल्लाता है। इसलिए भागवत में कहा गया – "अजातपक्षाः इव मातरं खगाः"। दूसरा उदाहरण है – "स्तन्यं यथा वत्सतराः क्षुधार्ताः" एक गाय वन में घास चरने गयी थी, जाने क्या हुआ, किसी हिंसक पशु ने उसे मार दिया अथवा मार्ग भूल गयी, वन से लौटकर वह नहीं आई। संध्या हो गयी, अब उस गाय का छोटा-सा बछड़ा भूखा-प्यासा दूध पीने के लिए औं-औं करके अपनी माँ को पुकारता है। तीसरा उदाहरण – "प्रियं प्रियेव व्युषितं विषण्णा" एक सैनिक युद्धभूमि में जाते समय अपनी स्त्री से कह गया था कि अमुक तिथि को यदि मैं वापस न लौटकर आऊँ तो निश्चित समझ लेना कि युद्ध में मेरी मृत्यु हो गयी। वह तिथि आ गयी और उसकी स्त्री, जिसका घर वन में था, वहाँ एक कुटिया में निवास करते हुए रात्रि में दीपक जलाकर अत्यधिक व्याकुलता के साथ अपने पति के वापस आने की प्रतीक्षा करती है और सोचती है कि मेरा पति यदि आज नहीं आया तो यह निश्चित है कि उसकी मृत्यु हो गयी होगी। वृत्रासुर कहता है – हे कमलनयन ! (कमल पानी में रहता है) मन के कमल में खिलने वाले हे गोपाल ! ये तीनों – (चिड़िया का असहाय शिशु, गाय का छोटा-सा बछड़ा एवं विरहिणी स्त्री) जिस प्रकार क्रमशः अपनी माताओं एवं प्रवासी पति के आने की अत्यधिक अधीरता के साथ प्रतीक्षा करते हैं, मैं भी इसी प्रकार तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा हूँ, तुमसे मिलने के लिए तड़प रहा हूँ। अतः अब भी आ जाओ ...

भव–निस्तारक 'श्रीगुरुदेव'

वन्दे राधिकां देवीं किशोरीं माधव स्वामिनीम् ।
श्यामां गजगामिनीं चैव त्रिभुवनमोहनमोहिनीम् ॥

यह राधारानी की वन्दना है, जिसका अर्थ है कि राधारानी किशोरी हैं, नित्य षोडश वर्ष की हैं किन्तु भगवान् श्यामसुन्दर की भी स्वामिनी हैं। संसार के नाथ भगवान् और उनकी भी स्वामिनी श्रीराधा। सारे संसार की वे जननी हैं, इसका यह मतलब नहीं है कि वे वृद्धा हैं, "श्यामां षोडश वार्षिकी" – नित्य सोलह वर्ष की उनकी आयु है और वे गजगामिनी हैं, गज की सी चाल से चलती हैं। सबसे सुन्दर चाल गज की होती है, वह झूम–झूमकर चलता है, इधर–उधर, बायें–दायें झूमता हुआ चलता है। उसकी चाल संसार में सबसे अधिक प्रसिद्ध है, उसी प्रकार श्रीराधारानी चलती हैं, अतः गजगामिनी हैं।

सहजोबाई के गुरु का नाम था 'चरणदासजी'। वह अपने गुरु को साक्षात् श्रीजी–ठाकुरजी के रूप में मानती थीं। उनकी जैसी गुरु भक्ता आज तक नहीं हुई। गुरु भक्ति के बारे में उनका यह विश्व प्रसिद्ध पद है –

हम बालक तुम माँय हमारी।
पल पल माहिं करहु रखवारी ॥

प्रयाग में मेरा जन्म हुआ था, वहाँ गंगाजी के उस पार झूसी में हमारे माता–पिता का गुरुद्वारा था। उस गुरुद्वारे में हम लोग भी जाते थे। मैं उस समय बहुत छोटा था और वहाँ पर यही प्रार्थना गायी जाती थी – "हम बालक तुम माँय हमारी। पल–पल माँहि करहु रखवारी ॥" ऐसा सुना है कि सहजोबाई तब बहुत छोटी थीं, जब उन्होंने संत चरणदासजी की शरण ग्रहण की थी। चरणदासजी इनके गुरु थे, बड़े सच्चे, निःस्पृही संत थे।

शिष्य को ऐसा चाहिए गुरु को सर्वस्व देय।
गुरु को ऐसा चाहिए शिष्य का कछु नहिं लेय ॥

शिष्य ने गुरु को ही भगवान् समझकर अपना सर्वस्व सौंप दिया और गुरु भी ऐसे निःस्पृह थे कि शिष्य से कभी एक गिलास पानी भी नहीं माँगा, शिष्य को छोड़कर चले गये। ऐसे गुरु, ऐसी शिष्या निश्चय ही भगवान् को वश में कर लेते हैं। ऐसा सुना है कि जब सहजोबाई थोड़ी बड़ी हुई तो संसार का नियम है विवाह करना। बड़े होने पर उनके पिताजी ने सहजोबाई का विवाह कर दिया। विवाह के समय वे अपने घर के आँगन में दुल्हिन के वेष में खड़ी थीं और उधर से उनके गुरुदेव परम विरक्त होने के कारण भिक्षा माँगते हुए निकले। बचपन के बाद अब गुरुदेव ने बहुत लम्बे समय पश्चात् अपनी शिष्य सहजो को देखा था। प्राचीन भारत में बाल्यावस्था में ही बच्चों का विवाह किया जाता था क्योंकि कुँवारी कन्या साक्षात् श्रीजी का रूप मानी जाती है। उस समय माता–पिता गोद में लेकर ही अपने बच्चों का विवाह कर देते थे। जिसे किसी भी विकार का ज्ञान न हो, उसको कन्या कहते हैं। अब तो कलियुग है। विवाह के पूर्व ही समस्त विषयों का ज्ञान हो जाता है। अस्तु, चरणदासजी सहजो के घर के बाहर से होकर निकले। घर के भीतर एक विवाह मण्डप था। चरणदासजी ने भिक्षा लेने के लिए सहजोबाई के घर के बाहर खड़े होकर पुकारा – 'नारायण हरि !'

गुरुदेव ने देखा कि उनकी शिष्या सहजो अब बड़ी हो चुकी है। प्राचीनकाल में भारत में कुँवारी कन्या का कन्यादान होता था। जिसको विषयों का ज्ञान न हो, उसे कन्या कहते हैं। सहजो ने देखा कि घर के बाहर गुरुदेव खड़े हैं। बड़े आश्चर्य की बात यह हुई कि सहजो 'गुरुदेव' को पहचान गयी। जबकि ऐसा सुना जाता है कि पूर्व जन्म से चरणदासजी के साथ सहजो का गुरु–शिष्य का सम्बन्ध था। पूर्व जन्म में गुरु के साथ इस सम्बन्ध को सहजो अब तक नहीं भूली थी। इस जन्म में विवाह–बन्धन में बँधने जा रही दुल्हिन के वेष में खड़ी सहजो को देखकर गुरुदेव ने कहा – 'अरी सहजो ! ये क्या ?' गुरुदेव के आश्चर्यजनक इस वाक्य का अभिप्राय यह था कि पूर्व जन्म में मैंने तुझे जो गुरु–दीक्षा प्रदान की थी, वह भगवान् को प्राप्त करने के लिए थी। सहजो

ने कहा – 'गुरुदेव ! आपकी अहैतुकी असीम अनुकम्पा है ।' गुरुदेव रात्रि के अन्धकार में वहाँ से चले गये । ये नहीं पता चला कि कहाँ गये ? सहजो भी गुरुदेव का पीछा करते हुए जंगल की ओर दौड़ी । प्राचीन काल के जंगल बहुत सघन हुआ करते थे । गुरुदेव का पीछा करते हुए सहजो ने गुरु के लिए यही पद गाया –

हम बालक तुम माँय हमारी ।
छिन–छिन माँहि करहु रखवारी ।।

हे गुरुदेव ! तू मेरी सच्ची माँ है । वस्तुतः गुरु ही सच्ची माता है, जो जीव को संसार के बन्धनों से छुड़ाता है ।

निशदिन गोदी ही में राखो ।

हे गुरु माँ ! तू मुझे अपनी गोद ही में रख, गोद के बाहर मत जाने दे । यह संसार माया है ।

इत उत वचन चिताव न भाखो ।।

गोद में बैठा बच्चा इधर–उधर झाँकता है, जबकि बाहर सर्प–बिच्छू रहते हैं, उसे उनके काटने से उत्पन्न पीड़ा का कोई ज्ञान नहीं होता । इसलिए बच्चा कभी–कभी सर्प–बिच्छू को पकड़ने दौड़ता है और माँ उसकी रक्षा करती है । **विषय ओर जाने नहीं देओ ।**

ढुरि–ढुरि जाऊँ तो गहि–गहि लेओ ।।

माँ की गोद से उतरकर बच्चा सर्प और बिच्छू पकड़ने के लिए जाता है । उस समय उसकी माँ चिल्लाते हुए कहती है – 'अरे अनजान, वहाँ क्यों जाता है, वहाँ सर्प–बिच्छू हैं, तुझे काट लेंगे ।' **मैं अनजान कछू नहीं जानूँ ।**

भली बुरी को नहीं पहचानूँ ।।
जैसी तैसी तुमहीं चीन्हेऊ ।
गुरु ह्वै ध्यान खिलौना दीन्हेऊ ।।

हे गुरुदेव ! तुम्हीं ने मुझे भगवान् का ध्यान करना बताया था । **तुम्हरी रक्षा ही से जीऊँ ।**

नाम तुम्हारो अमृत पीऊँ ।।

बच्चा बिच्छू अथवा सर्प पकड़ने जाता है तो माँ उसे रोक देती है, उसकी रक्षा करती है । इसी प्रकार गुरु रूपी माँ अपने शिष्य रूपी बालक को सावधान करते हुए कहते हैं – 'ये संसार के विषम विष रूपी भोग हैं, इनसे दूर हो जा, भोगियों के पास से हट जा ।' इसीलिए ब्रह्मचर्य में सबसे दूर रहना, गुरुकुल में रहना सिखाया जाता है । बच्चा बिच्छू की ओर हाथ बढ़ाता है तो माँ कहती है – 'अरे, यह बिच्छू है, इसको मत पकड़, यह सर्प है, काट लेगा, इससे दूर रह ।' **दृष्टि तुम्हारी ऊपर मेरे । सदा रहूँ मैं शरणी तेरे ।।**

यह बड़ी विचित्र कड़ी है – 'हे माँ ! मैं तेरी शरण में हूँ ।' इसकी पहचान है – **मारो– झिड़को तो नहीं जाऊँ ।**

सरक–सरक तुमहीं पै आऊँ ।।

हम जब ब्रजवास के प्रारम्भिक दिनों में गाँव में भिक्षा माँगने जाते थे तो वह घर अब तक याद है, जहाँ मैंने यह दृश्य देखा था – एक गोपी चूल्हे पर रोटी बना रही थी और उसका छोटा–सा बच्चा बार–बार गोद में आ रहा था । माता क्रोध में झिड़ककर बच्चे को गोद से अलग कर देती थी, मैया बच्चे को डाँटते हुए कहती थी – 'निपूते ! चूल्हे के दिए !!' ये दो गालियाँ ब्रज की मैया ने अपने बच्चे के लिए प्रयुक्त की थीं और झिड़ककर गोद से अलग कर दिया था । **मारो झिड़को तो नहीं जाऊँ ।**

सरक–सरक तुमहीं पै आऊँ ।।

ये दो पंक्तियाँ जब कभी भी मैं गाता हूँ तो भिक्षा माँगते समय के ब्रज के घर के उस दृश्य की मुझे स्मृति हो आती है । मैया ने बार–बार झिड़ककर बालक को अपनी गोद से हटा दिया, फिर भी बालक माँ की गोद में चढ़ने का प्रयास करता था । **चरणदास की सहजो दासी ।**

गुरु रक्षक पूरण अविनाशी ।।

गुरु भगवान् है । इसीलिए शास्त्र में कहा गया –

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णो गुरुर्देवो महेश्वरः ।
गुरुर्साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः ।।

गुरु ही ब्रह्मा है, गुरु ही शिव है, गुरु ही विष्णु है, गुरु साक्षात् भगवान् है । ऐसे गुरुदेव को नमस्कार है ।

चरण दास की सहजो दासी ।
गुरु रक्षक पूरण अविनाशी ।।

स्वदोष–दर्शन से श्रीइष्ट–प्राप्ति सहज

नित्याराधना में बाबाश्री द्वारा पद–व्याख्या (२२ दिसम्बर २०२२)

कहा जाउँ, कासों कहौं, और ठौर न मेरे।
जनम गँवायो तेरे ही द्वार किंकर तेरे ॥

(श्रीतुलसीदासजी कृत विनयपत्रिका – १४९)

हे दीनानाथ ! आपका नाम दीनानाथ है। मुझ जैसा दीन न कोई था, न है और न कोई होगा। मैं कहाँ जाऊँ, कौन है जिससे मैं अपनी दीनता कहूँ ? "कासों कहौं, और ठौर न मेरे।" इस संसार में न कोई दीनानाथ है और न ही मुझ जैसा कोई दीन है, तुम दीनानाथ हो तो मेरे लिए और कोई स्थान बताओ। "जनम गँवायो तेरे ही द्वार" – मैंने आपके द्वार पर अनन्त समय बिता दिया, 'किंकर तेरे' – मैं तेरा ही किंकर हूँ। 'तू दयालु दीन हौं, तू दानि हौं भिखारी।' गोस्वामीजी कहते हैं – हे नाथ ! मैं तेरा किंकर हूँ, तू मेरा स्वामी है, मैं कहाँ जाऊँ, कहाँ रहूँ, और कहीं जाने की न तो कोई जगह है, न कोई स्थान है, यदि है तो आप बताइये।

और क्या दुनिया में कोई दीनदयाल है, क्या कोई और है जो दीनों की सुनने वाला है, जिसके द्वार पर दीन लोग अपना आश्रय ग्रहण करें, क्या और कोई है संसार में, जो दीनों की सुनने वाला है, कोई नहीं है। न था, न है और न होगा। इसलिए मैं किससे कहूँ ? और कोई ठौर (स्थान) मेरे लिए नहीं है। जनम गँवायो – अनादिकाल से मैंने जन्म गँवाया, द्वार–द्वार, इधर–उधर भटकता रहा। जन्म गँवाया, फिर तेरा द्वार मिला, तेरे ही द्वार का मैं किंकर (दास) हूँ और तेरा ही हूँ। हे नाथ ! अब तू ही मेरी सुनेगा और कौन सुनेगा ? **मैं तो बिगारी नाथ सों आरति के लीन्हें।**

तोहि कृपानिधि क्यों बनै मेरी–सी कीन्हें ॥

मैंने आपका आश्रय नहीं लिया और इधर–उधर भटकता रहा। इसीलिए इस संसार में कष्ट पाता रहा, ये मैंने अपने कर्मों का फल पाया। ये कष्ट मुझे क्यों मिले, क्योंकि मैंने दीनानाथ से बिगाड़ कर लिया। कष्ट का कारण क्या है, वह है आपसे बिगाड़ना। 'तोहि कृपानिधि क्यों बनै'– हे नाथ ! अब आप मेरे साथ, जैसे को तैसा (tit for tat) वाला बर्ताव क्यों करेंगे, 'मेरी सी कीन्हें' – आप भी यदि मेरी तरह करेंगे तो मेरी बिगड़ी कभी नहीं बनेगी।

दिन–दुरदिन दिन–दुरदसा, दिन–दुःख दिन दूषन।

जब लौं तू न बिलोकिहै रघुबंस–बिभूषन ॥

प्रतिदिन दुःख–कष्ट–दुर्दशा, हर क्षण दुःख बढ़ रहे हैं, दोष बढ़ रहे हैं। हे रघुवंश–विभूषण ! जब तक आप नहीं देखेंगे, हे राम ! आप सारे रघुवंश के विभूषण हैं, रघुवंश की शोभा हैं, इसलिए हे नाथ ! तुम मेरी तरह मत करना। आकाश में बादल आते हैं, छाया करते हैं, यदि कोई उस छाया में न बैठे तो दोष किसका है, बादल का दोष है अथवा उसकी छाया में न बैठने वाले का दोष है। सभी जानते हैं कि बादल की छाया में न बैठने वाले का दोष है, वह छाया छोड़कर बाहर चिलचिलाती हुई धूप में जाता है, कष्ट पाता है, दुःख भोगता है, इसी प्रकार हे नाथ ! मैं कहीं जाने योग्य नहीं हूँ। कहाँ जाऊँ, किससे कहूँ, 'और ठौर' – अन्य स्थान मेरे लिए न था, न है और न ही होगा। तेरे ही द्वार पर मैंने सारा जन्म गँवा दिया, मैं तेरा किंकर हूँ और अब तेरा ही आश्रय लिया है। 'मैं तो बिगारी नाथ सों आरति के लीन्हें।' हे नाथ ! पहले मैंने ही तुम्हारा आश्रय छोड़ दिया था, अतः कष्ट पाने का कारण भी स्वयं मैं ही हूँ । 'तोहि कृपानिधि क्यों बनै मेरी–सी कीन्हें।' हे नाथ ! अब तुम भी यदि मेरी–सी करोगे तो फिर मेरी क्या गति होगी ? कुछ नहीं हो सकता है और यदि कुछ होगा तो

'दिन–प्रतिदिन दुर्दिन' अर्थात् ख़राब समय आएगा, 'दिन–प्रतिदिन दुर्दशा' हम जीवों के मन–बुद्धि की दशा 'दिन–दुःख–दिन–दूषन' अर्थात् प्रतिदिन दोष बढ़ता जायेगा। दोष बढ़ेगा तो दुर्दशा बढ़ेगी, दुःख बढ़ेगा। 'जब लौं तू न बिलोकिहै रघुबंस–बिभूषन।' हे गोविन्द ! जब तक तू नहीं देखेगा, तू रघुवंश–विभूषण है, इस

संसार की शोभा है, संसार की शुभ गति है। इसलिए हे नाथ ! तुम मेरी तरह मत करो। मैं तो दुर्दशा, दूषण और दुर्दिनों का मूल हूँ। हे गोविन्द ! तुम इनके प्रतिउत्तर में, इनका मूल अर्थात् इनका कारण मत बनना, इनके नाशक बन जाओ, दूषण के भूषण बन जाओ। मैं तेरा दास हूँ और अनादिकाल से अब तक तेरे ही द्वार पर मेरा समय बीता है। ये दुःख मैंने क्यों पाए ? 'मैं तो बिगारी नाथ सों आरति के लीन्हें' – हमें कष्ट क्यों मिला क्योंकि मैंने आपसे बिगाड़ लिया, आपका आश्रय छोड़ दिया, आपका आश्रय छोड़कर भिखमंगों के द्वार भटकता रहा, उनसे सुख माँगता रहा, भिखारियों से सम्पन्नता चाहता रहा। इसलिए हे नाथ ! अनन्त कष्टों का कारण मैं ही हूँ। तू तो कृपानिधि है, मैंने तुझसे बिगाड़ लिया किन्तु यदि अब तू भी मेरी तरह मुझसे बिगाड़ेगा, जैसे को तैसा की तरह बर्ताव करेगा तो दुर्दिन अर्थात् मेरा ख़राब समय, 'दुरदसा' – मेरी ख़राब दशा और 'दिन–दुःख' – प्रतिदिन दुःख की प्राप्ति और प्रतिदिन दोष बढ़ता जायेगा। हे संसार के विभूषण ! हे रघुवंश के विभूषण ! भक्तों की शोभा ! भक्तों के प्राण ! जब तक तू नहीं देखेगा, तब तक न मेरी दशा सुधरेगी और न ही दिन सुधरेगा और न ही सुख की प्राप्ति होगी। अब प्रतिदिन दुर्दिन – विपरीत समय आ रहा है और प्रतिदिन दुर्दशा बढ़ती जा रही है एवं प्रतिदिन दुःख बढ़ता जा रहा है, इसलिए बढ़ रहा है क्योंकि दोष बढ़ रहे हैं। दुर्दिन, दुर्दशा, दुःख एवं दोष – ये सभी एक ही हैं, एक ही खेत की उपज हैं। जब दुर्दिन आते हैं तो 'विनाश काले विपरीत बुद्धि' दुर्दिन आता है तो दुःख अवश्य ही आएगा, दुःख आएगा तो दोष अवश्य ही बढ़ेंगे। दोष में मनुष्य की बुद्धि विपरीत हो जाती है किन्तु वह उन दोषों का कारण भगवान् को मानता है, दूसरों को मानता है। भगवान् से विमुख होने का कारण अपनेआप को नहीं मानता है। समस्त दोषों का मूल संसार है, यह मानता है। ऐसा कभी नहीं कहता कि 'मो सम कौन कुटिल खल कामी।' ऐसा संसार में कोई नहीं कहता है। सभी कहते हैं – तू दुष्ट, तू खल, तू कामी। हर आदमी अपने को सुन्दर साधु और गुणवान समझता है। प्रत्येक व्यक्ति यही सोचता है कि संसार के सारे गुण मुझमें हैं और संसार दोषमय है। अपने को दोषी कहने वाला तो न कोई है, न था, यदि था तो कोई महापुरुष ही था क्योंकि ऐसा महापुरुषों ने ही कहा – 'मो सम कौन कुटिल खल कामी।' हे गोविन्द ! मेरे समान कुटिल, मेरे समान कामी और मेरे समान खल, इस संसार में कोई नहीं है और हम लोग इसके विपरीत कहते हैं कि इस संसार में एकमात्र मैं ही गुणवान हूँ, काम को नष्ट करने वाला मैं हूँ। मनुष्य कभी अपने मन में नहीं सोचता कि मैं कामी हूँ, दोषी हूँ। तुलसीदासजी कहते हैं – हे नाथ ! तुम कृपानिधि हो, तुम रघुवंशविभूषण हो, इस संसार की शोभा हो, सारे रघुवंश की एकमात्र तुम्हीं शोभा हो। इसलिए हे नाथ ! जब तुम देखोगे तब अवश्य ही हमारे में सद्बुद्धि आएगी। **'दई पीठ बिनु डीठ मैं, तुम बिस्व–बिलोचन।'** अब तक मैंने जो कष्ट पाए, उसका कारण यही था कि मेरे अन्दर दोष थे, मैंने आपकी तरफ पीठ कर ली। पीठ करने का मतलब है कि आपकी ओर पीठ करके बैठ गये, समस्त इन्द्रियाँ आपके सम्मुख हो जाएँ, उसको कहते हैं आपकी ओर दृष्टि करना जैसे कि आँख से भगवान् के भक्तों को देखा जाए, कान से उन्हीं की बात सुनी जाए अथवा सुहृद माता–पिता आदि या जितने भी हितैषी हैं, उनकी बात सुनी जाए, मानी जाए, बुद्धि से उन्हीं की बात सोची जाए। ऐसा कहाँ होता है, न तो हम अच्छी बात सुनते हैं, न मानते हैं और न ही सोचते हैं। दिन–रात हर आदमी अपने को गुणमय मानता है, कोई भी अपने को दोषी नहीं मानता है। यदि आज हम लोग यह मानने लग जाएँ कि समस्त दोषों के मूल हम ही हैं, हम ही थे और हम ही होंगे। उसी क्षण, उसी पल से जीव भगवान् की शरण में चला जायेगा, दीनता बढ़ जाएगी, अहं का नाश हो जायेगा, मंगल ही मंगल होने लग जायेगा किन्तु ऐसा एक भी आदमी नहीं है, जो सूरदासजी की तरह कह दे कि मैं संसार का सबसे बड़ा कामी, मैं ही संसार का सबसे बड़ा खल एवं मैं ही दुनिया का सबसे बड़ा कुटिल व्यक्ति हूँ। एक आदमी भी

दुनिया में ऐसा नहीं दिखाई देता है, जो ऐसा सोचे और ऐसा कहे। ऐसा सोचोगे तो अवश्य ही भगवान् की कृपा मिलेगी, अवश्य ही तुम भगवान् के बन जाओगे किन्तु दुनिया का एक भी आदमी ऐसा नहीं सोचता। न बेटा, न बेटी, न बहू, कोई भी अपने को दोषी नहीं मानता, सभी सोचते हैं कि इस घर में हम ही एकमात्र ऐसे व्यक्ति हैं, जो गुणवान हैं। किसी परिवार में एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं मिलता, जो सोचता हो कि सारे परिवार का, परिवार का ही नहीं अपितु सारे संसार का एकमात्र दोषी व्यक्ति मैं ही हूँ, सारे संसार का कुटिल एकमात्र मैं ही हूँ, सारे संसार में खल एकमात्र मैं ही हूँ, एक भी आदमी दुनिया में ऐसा नहीं मिलता, न समाज में, न घर में और न बाहर। यदि संसार में सब लोग ऐसा ही सोचने लग जाएँ तो समस्त विश्व भगवद्धाम बन जाए, घर वैकुण्ठ बन जाए, वह 'घर' घर नहीं रहेगा, वह भक्तों का समुदाय बन जायेगा किन्तु हर व्यक्ति अपनी अहंता की पूर्ति करता है। वह सोचता है कि मैं ही गुणवान हूँ, मेरे कारण ही घर चल रहा है, मेरे कारण परिवार चल रहा है। ऐसा कोई नहीं सोचता कि मेरे कारण परिवार का, घर का, व्यक्ति का, समाज का एवं समुदाय का नाश हो रहा है; इसका कारण मैं हूँ।

दई पीठ बिनु डीठ मैं तुम बिस्व–बिलोचन।

हे नाथ ! मैंने तुम्हारी तरफ पीठ कर लिया है, पीठ कर लेने का अभिप्राय यह है कि तुम्हें नहीं देखता हूँ , यह नहीं सोचता कि तुम कण–कण में हो, सब कुछ देख रहे हो किन्तु मैं अन्धा बना रहा, जबकि तुम विश्व विलोचन हो अर्थात् सारे संसार के नेत्र हो, समस्त विश्व को देखते हो, फिर भी मैंने तुम्हारी ओर पीठ किया। बिना दृष्टि के मैंने तुम्हारी ओर पीठ किया। हर समय यह विचार छोड़ दिया कि भगवान् देख रहा है। मेरे पीठ करने से क्या होता है, संसार के कण–कण पर तुम्हारी दृष्टि है। वेदों में कहा गया है कि उस भगवान् की अनन्त आँखें हैं, अनन्त कान हैं किन्तु मैं अब तक यही समझता रहा कि कोई देख नहीं रहा है। मैं छिपकर गलत काम कर रहा हूँ तो उसे कोई देखने वाला नहीं है। यदि यह विचार हो जाये कि वेदों ने भगवान् को 'सहस्राक्ष' व 'सहस्र पाद' कहा है अर्थात् उस परमात्मा की अनन्त आँखें हैं, वह सब जगह देख रहा है। इतना स्मरण रहे कि भगवान् सब जगह देख रहा है तो फिर कभी भी हमारे द्वारा गलत काम नहीं होगा, न ही उसका कोई गलत फल मिलेगा किन्तु मैं अन्धा बना रहा और यह सोचता रहा कि भगवान् देख नहीं रहा है, भगवान् सुन नहीं रहा है, इसीलिए जिसकी चाहे बुराई करता रहा, जो मन में आया, वही बकता रहा। यदि वेद की यही बात याद रहे कि उस परमेश्वर की अनन्त आँखें हैं, अनन्त हाथ हैं, अनन्त पाँव हैं, ऐसी हमारी कौन–सी बात है, जिसको वह जानता नहीं है। हम उससे छिपाते हैं, जो अन्तर्यामी है, जिसकी अनन्त आँखें हैं। उससे छिपाते हैं, जिसके अनन्त कान हैं, अनन्त हाथ हैं। दूसरों से भीख माँगते हैं, जिनके न हाथ हैं, न पाँव हैं, जिनमें न तो किसी प्रकार की सहायता करने की न तो अक्ल है और न ही शक्ति है और जिस भगवान् की अनन्त भुजायें हैं, जो स्वयं अनन्त शक्तिशाली है, उससे हम व्यभिचार करते हैं, उसको नहीं देखते हैं, उसको भूल गये हैं। हे नाथ ! यह मेरी कैसी दशा है ? 'दई पीठ बिनु डीठ मैं तुम बिस्व–विलोचन।'

हे नाथ ! मैंने तुम्हारी तरफ पीठ किया, क्यों ? बिनु डीठ – मेरी आँखें फूट गयी थीं, मैं अन्धा हो गया था और यह भूल गया कि भगवान् देख रहा है। मैंने यह सोचकर प्रभु से पीठ फेर लिया कि वह देख नहीं रहा है, ऐसा इसलिए किया क्योंकि स्वयं मेरी ही आँखें फूट गयी थीं। भगवान् तो सहस्राक्ष हैं, जिसकी अनन्त आँखें हैं, वह तो सदा सब ओर देख रहा है किन्तु मैंने यही समझा कि मैं जो गलत कार्य करता हूँ, उसको देखने–सुनने वाला, उसके बारे में कुछ कहने वाला कोई नहीं है, चाहे मैं कुछ भी करता रहूँ। यदि हम यह स्मरण रखें कि भगवान् हर जगह देख रहा है, उसकी अनन्त आँखें हैं। भगवान् सदा देख रहा है, इस विचार मात्र से ही समस्त दोष नष्ट हो जायेंगे।

वास्तविक भक्ति 'दीनता'

भगवान् सब कुछ सुन रहा है, इतने से ही अनन्त शब्द बेकार चले जायेंगे। भगवान् हजारों हाथ वाला है, इतने स्मरण से ही अनन्त सहायतायें मिलेंगी, अनन्त दुष्कार्य बन्द हो जायेंगे। केवल भगवान् की उपस्थिति से ही दोष समाप्त हो जायेंगे, भगवान् की सर्वत्र, सर्वदा उपस्थिति के सोचने मात्र से सहायता मिलेगी, शक्ति आ जाएगी किन्तु हम लोग ऐसा सोचते ही नहीं हैं। हम सोचते हैं कि न कोई देख रहा है, न कोई सुन रहा है। इसीलिए भगवान् को हम भूले बैठे हैं। यदि मनुष्य इतना ही स्मरण रखे कि भगवान् देख रहा है, भगवान् सोच रहा है, भगवान् सुन रहा है तो समस्त अनर्गल (व्यर्थ के) शब्द बन्द हो जायेंगे और हम सोच–विचारकर बोलेंगे, विचारपूर्वक सम्पूर्ण कार्यों को करेंगे। केवल भगवान् की उपस्थिति का स्मरण ही समस्त विश्व को गुणमय बना देगा, सारी क्रियायें गुणमयी हो जायेंगी, हमारे शब्द गुणमय हो जायेंगे, हमारे कार्य गुणमय हो जायेंगे किन्तु अभी हमारी दुर्दशा का कारण यह है कि हम गुणहीन कार्य करते हैं, गुणहीन अर्थात् दोष ही सोचते हैं, दोषमय देखते हैं। सारा संसार गुणमय है, प्रभुमय है किन्तु कभी भी हमने न ऐसा सोचा, न कभी सोचते हैं। यह विचित्र लीला है। हमारी बुद्धि ही नष्ट हो गयी है। बुद्धि कभी भी नहीं सोचती कि इस संसार में भगवान् है, भगवान् देख रहा है, भगवान् गुणमय है, भगवान् सब कुछ सुन्दर कर रहा है। हमारे विचार गन्दे क्यों हैं, इसका कारण यही है कि (हमारी दृष्टि से, हमारी बुद्धि के अनुसार) भगवान् इस संसार से चले गये हैं, इसीलिए हमारे विचार गन्दे हैं, सदगुणमय नहीं हैं। वेदों में ऐसा लिखा है – 'सदैव सद्ब्रह्मेति वेद चेत् असदैव असद् ब्रह्मेति वेद चेत्।' – जो ऐसा सोचता है कि सब सद् है, भगवान् है तो उसके लिए सब कुछ भगवान् ही बन जाता है तथा असद् सोचने वाला असद् हो जाता है। सब भगवान् नहीं है, सर्वत्र अमंगल है, सारा संसार दोषमय है – ऐसा सोचने वाला दोषयुक्त हो जाता है एवं दोष को, विनाश को ही प्राप्त होता है। वेदों में कहा गया है कि तुम सब जगह भगवान् को ही समझोगे तो भगवान् ही बन जाओगे, तुम्हारे संकल्प से, सोचने की शक्ति से सारा संसार ही भगवान् बन जाएगा, दुष्ट भी भगवान् बन जाएगा। हे नाथ ! दई पीठ बिनु डीठ मैं – मेरे अन्दर दृष्टि नहीं थी, इसलिए मैंने आपकी ओर पीठ कर ली और सोचा कि सब भगवान् नहीं है, सर्वत्र अमंगल है, सब कुछ दोषमय है, ये सब संसार चोर है, ये संसार बदमाश है, इसका कारण यही है कि मैंने ऐसा ही सोचा; मैं स्वयं दोषी था, स्वयं अमंगलमय था। इसलिए हे नाथ ! सारा दोष मेरा है। 'यथा दृष्टि तथा सृष्टि' – जैसी हमारी दृष्टि होती है, वैसी ही सृष्टि बन जाती है। यदि तुम्हारी आँखें स्वच्छ हैं तो संसार स्वच्छ बन जायेगा और यदि तुम्हारी आँखें अंधी हैं तो सारा संसार अन्धा बन जाएगा। **सियाराममय सब जग जानी।**

करहुँ प्रनाम जोरि जुग पानी॥

रामायण की ये चौपाई लाखों बार सुनी होगी किन्तु ऐसी बात कभी हमारी क्रिया में नहीं आई। किसी भी प्राणी को हमने भगवान् नहीं समझा तथा किसी भी देवी को सियाजी नहीं समझा, किसी भी जीव को हमने भगवान् राम नहीं समझा। केवल बातें बना लेते हैं कि सियाराममय सब जग जानी.....। **पराधीन देव दीन हौं, स्वाधीन गुसाईं।**

बोलनिहारे सों करै बलि बिनय की झाईं॥

हे देव ! मैं तो परतन्त्र हूँ, दीन हूँ, परन्तु तू तो परम स्वतन्त्र है। जो बोलता अधिक है, अपनी ही बात को सर्वोपरि रखना चाहता है, उसके सामने विनय कौन करेगा ? ऐसा बकवादी मनुष्य भला किसकी सुनेगा और किसकी बात मानेगा क्योंकि वह स्वयं ही निरन्तर बोलता रहता है कि यह मैंने किया, मैं ऐसा काम करता हूँ, मैं गुणवान हूँ – इस प्रकार जो केवल अपनी ही सत्ता रखता है, उससे क्या विनय की जा सकती है, वह सुनता ही नहीं है, तुम कुछ भी कहते जाओ। उसके सामने तुम क्या बोलोगे, जैसे वकील जब अदालत में बहस करता है तो उसके सामने कोई क्या बोल सकता है ? उससे कौन जीतेगा, न्यायाधीश भी वकील से नहीं जीत सकता। बोलनहारा – जो अपनी ही प्रशंसा करता जा रहा है कि मैंने ये किया, मैंने ऐसा करता हूँ, उसके सामने तुम क्या बोलोगे,

उसकी 'मैं–मैं–मैं' जारी रहती है और 'मैं–मैं' के आगे कुछ नहीं हो सकता, 'बिनय की झाई' – उसके सामने तुम्हारा विनय परछाई की तरह व्यर्थ चला जायेगा क्योंकि वह तुम्हारी सुनेगा ही नहीं । वह कहेगा, तुम जानते नहीं, मेरे कारण यह संस्था चल रही है, ये घर मेरे कारण चल रहा है, मेरे कारण यह कार्य हुआ है । अब इस तरह अपनी ही प्रशंसा में लगे हुए व्यक्ति के आगे कौन बोलेगा । उससे कहना पड़ेगा – हाँ भाई ! तू ही सब कुछ है, तेरे कारण ही यह संसार चल रहा है, यह काम तेरे ही कारण हुआ, तेरे कारण तेरा घर चल चल रहा है, तेरे कारण संस्था चल रही है । तुलसीदासजी कहते हैं – हे नाथ ! यह सारा संसार बोलनहारा है, अपने मुख से अपनी प्रशंसा 'मैं–मैं–मैं' ही सदा करता रहता है । ऐसी स्थिति में – 'कहाँ जाऊँ, कासों कहौं, और ठौर न मेरे ।' मैं कहाँ जाऊँ, किसको अपनी व्यथा सुनाऊँ ? आपके अतिरिक्त मेरा कोई आश्रय नहीं है । 'आपु देखि मोहि देखिये जन मानिय साँचो ।' तुम अपने आप को पहले देखो कि तुम क्या हो, फिर उसके बाद प्रभु को देखो । ऐसा स्वभाव जिसका है, उसको सच्चा आदमी समझो । जो अपने आप को देखता ही नहीं है, अंधा है, वह भगवान् को क्या देखेगा । यह आदत किसी में नहीं है, हर आदमी अन्धा है, अपने दोषों को न देखता है, न सुनता है, न समझता है । आजकल के लोगों के पास दो नहीं चार आँखें हैं किन्तु चारों अंधी हैं । दो आँखें स्वयं की और दो आँखें चश्मे की । चतुःचक्षु होकर भी चारों आँखें फूट गयी हैं, इसलिए अंधे हैं । यही कारण है कि मनुष्य अपने आप को नहीं देखता है । अतः तुलसीदासजी कहते हैं कि आप पहले अपने आप को देखो फिर मुझको देखो । ऐसी आदत जिसमें है, उस मनुष्य को सच्चा समझो । जो अपने आप को नहीं देखता, अपने आप ही अंधा बन गया है, वह झूठा है, उसको बिलकुल झूठा समझो । जो अपने आप को देखना जान गया, वह भगवान् को देख लेगा – **आपु देखि मोहि देखिये जन मानिय साँचो ।**

बड़ी ओट राम नाम की जेहि लई सो बाँचो ।।

भगवान् के नाम की ओट यानि भगवान् की ओट जिसने लिया, केवल उसी को सत्य समझो । जो अपने आप को देखता है, वह भगवान् को देखेगा, उस मनुष्य को सच्चा समझो । जिसने भगवान् के नाम की ओट ली, समझो कि वही बच गया । बाकी सब संसार झूठ है, उसकी बात न तो सुनो और न ही मानो । वह तो नास्तिक है, जो भगवान् को ही नहीं मानता है, वह भगवान् की बात क्या मानेगा ?

रहनि रीति राम रावरी नित हिय हुलसी है ।
ज्यों भावै त्यों करु कृपा तेरो तुलसी है ।।

एक बात सोच लो कि हम कुछ नहीं कर रहे हैं, 'ज्यों भावै त्यों करु कृपा' – तब भगवान् ही करेंगे । 'तेरो तुलसी है' – मैं–मेरापन छोड़ दो और जो कुछ है, भगवान् का है । तब कृपा मिल जाएगी । हे नाथ ! तब तुम कृपा करोगे । इसलिए 'रहनि रीति राम रावरी नित हिय हुलसी है' – हे प्रभो ! ऐसी रहनी, ऐसी पद्धति कि तुम्हारी ही सब वस्तु हो, तुम्हीं सब कुछ करने वाले हो, ऐसा हृदय में हुलास अर्थात् विचार आवे । उसी से भगवान् की कृपा मिलेगी और तुम भगवान् के हो जाओगे । विनय पत्रिका के पदों की रचना मैंने नहीं, गोस्वामी तुलसीदासजी जैसे अलौकिक महापुरुष ने की है । विनयपत्रिका के पदों में गोस्वामीजी ने जो भी कहा, आज से ही उसका चिन्तन–मनन व पालन करना आरम्भ कर दो । तुम लोग जब आरम्भ कर दोगे तो भगवान् आ जायेंगे, यह निश्चित बात है । 'दीनन हित अवतरी जगत में, दीनपालिनी हिय विचरो ।' यदि परिवार में दीनता आ जाए तो उस घर में भगवान् आ जायेंगे, उस परिवार का पालन भगवान् करेगा, उस परिवार में अहंता की लड़ाई बन्द हो जायेगी, दीनता की बात चलेगी । उस परिवार में भगवान् अवश्य ही आयेगा । इस पद की एक–एक पंक्ति सोने की है । ऐसे ही पद रटो और रटाओ । इस प्रकार रटो कि तुम्हारे जीवन में उतर आये एवं तुम्हारे साथी के जीवन में उतर आये, परिवार में उतर आये । ऐसा होने पर वह परिवार भगवान् का धाम बन जायेगा ।

सुदैन्यमयी आराधना से श्रीकृपानुभूति

दैन्य भावमय विनय के पद ढूँढ़कर प्रतिदिन गाने चाहिए और गाने से अधिक आवश्यक है कि उसको समझो । जब समझने लग जाओगे तब तुम्हें स्वयं ही यह बोध होगा कि यह अहंता बोल रही है, यह ममता बोल रही है, ये अहंता–ममता गलत है, तब तुम सच्चे संत बन जाओगे । इसमें संदेह नहीं कि यहाँ जितनी भी साध्वियाँ हैं, वे ऐसे पदों को सुनकर समझें एवं अभ्यास करें । जब कोई कड़ा बोल रहा हो तो हाथ जोड़कर उससे दीनतापूर्वक कह दो कि भक्त की वाणी ऐसी नहीं होती है, भक्त को दीन बनना चाहिए ।

तू दयालु दीन हौं, तू दानि हौं भिखारी ।
हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पाप पुंजहारी ।।

ऐसा जब शब्द निकलेगा तो निश्चित तुम भगवान् बनोगी, देवी बन जाओगी ।

नाथ तू अनाथ को अनाथ कौन मोसों ।
मो समान आरत नाहिं आरतिहरण तोसों ।।

ये सब बहुत बढ़िया पद हैं, वाल्मीकि जी के अवतार महात्मा तुलसीदासजी के द्वारा रचित हैं । भक्तमाल में लिखा है – 'कलि कुटिल जीव निस्तार हित वाल्मीकि तुलसी भयो ।' कलिकाल के कुटिल जीवों का उद्धार करने के लिए वाल्मीकिजी ही तुलसीदासजी के रूप में अवतरित हुए । सतयुग में भी बहुत प्राचीन काल में हुए भगवान् वाल्मीकिजी, इस कलियुग में पुनः तुलसीदासजी के रूप में उनका प्राकट्य हुआ । तुलसीदासजी के रूप में उन्होंने अनेक दिव्य पदों की रचना की । आज के उनके द्वारा रचित पद का भाव यह है कि हम लोग अपनी अहंता को, अपनी ममता को, अपने दोषों को पहचानें, जिनके दुष्प्रभाव से हम अंधे बन गये हैं, इसीलिए भगवान् हमें दिखाई नहीं पड़ते हैं । 'दई पीठ बिनु डीठ मैं तुम बिस्व बिलोचन ।' हम लोग अंधे बन गये हैं । सूरदासजी अंधे नहीं थे, हम लोग अंधे हैं । हम लोग बिना दृष्टि के हो गये हैं और भगवान् के अनन्त आँखें हैं, विश्व की आँखें हैं भगवान् । इन पदों के गाने से अगर हम लोगों की थोड़ी–थोड़ी आँखें खुल जाएँ तो निश्चित ही भगवान् दिखाई पड़ेगा, निश्चय ही भगवान् की कृपा मिलेगी, दया मिलेगी । हम भगवान् से कुछ छिपा नहीं सकते, हमारी हर क्रिया को भगवान् देख रहा है, यदि ऐसा हम सोचने ही लग जाएँ तो कभी भी कोई दोष नहीं रहेगा । हर क्रिया भगवान् देख रहा है, जब भगवान् देख रहा है तब तुम कोई गलत काम नहीं करोगे । भगवान् सब सुन रहा है, यह स्मरण रहे तो तुम कभी गलत बात नहीं बोलोगे । भगवान् देख रहा है और भगवान् सुन रहा है, इतने से ही हमारे सब दोष मिट जायेंगे । हम अपना उद्धार स्वयं कर लेंगे ।

राधे किशोरी दया करो ।

किशोरी राधारानी तब दया करेंगी, जब हम लोग ऐसी आदत बना लेंगे, निश्चित ही राधारानी दया करेंगी ।

'हमसे दीन न कोई जग में'

अभी हम लोग सोचते हैं कि हम बड़े गुणवान हैं, हमारे जैसा संसार में कोई नहीं है किन्तु ऐसा सोचो – 'हमसे दीन न कोई जग में' संसार में हम जैसा दीन न था, न है और न होगा । यही बात सूरदासजी ने कहा – मो सम कौन कुटिल खल कामी ।' सभी लोग अपने घर में ऐसी आदत बनायें, बच्चों में, स्त्रियों में, परिवार में भी हर व्यक्ति ऐसा ही माने कि 'हमसे दीन न कोई जग में' ऐसा सोचा ही नहीं कि बस – **'बान दया की तनक ढरो ।'**

तुमने सोचा कि हम संसार में सबसे अधिक दीन हैं कि बस, दया की फ़ौज चली आएगी ।

'सदा ढरी दीनन पै श्यामा'

ये भगवान् का नियम है, भगवान् का नाम है 'दीनानाथ', 'दीनदयाल'; जब तुम दीन बनोगे तो भगवान् अवश्य ही दया करेंगे । किन्तु कोई दीन बनता नहीं है । हम लोग सोचते हैं कि दुनिया में सबसे अच्छे आदमी हम ही हैं ।

देखो, वह घर भगवान् का निवास बन जायेगा । स्त्री हो, पुत्र हो, बच्चे हों, इनमें से हर कोई यही कहे कि 'हाँ जी, बात तो सही है, मेरी ही गलती है ।'

'यह विश्वास जो मनहि खरो ।'

ईमानदारी से ऐसा कहने पर घर में कोई लड़ाई–झगड़ा नहीं होगा । भगवान् की दया मिलेगी । इसलिए सभी लोग

ऐसी अपनी आदत बनाओ, ये बात सबको सिखाओ और आपस में यही बात करो कि दीन बनो, अहंता की वाणी बन्द कर दो। **'विषम विषय विष ज्वाल माल में**
विविध ताप तापनि जु जरो।'

विषम विष क्या है, विषम विष है – मैं, – 'ये काम मैंने किया, तू जानता नहीं।' बस इसी बात पर लड़ाई होती है। एक कहता है – 'तेरी गलती है', दूसरा कहता है – 'मेरी नहीं, तेरी गलती है।' इसी बात पर घर में लड़ाई होती है। स्त्री पति से कहती है – 'मेरी भूल नहीं, ये तुम्हारी भूल है।' पति अलग कहता है, बच्चा अलग कहता है – 'पिताजी ! सारी गड़बड़ी आपके कारण हुई।' पिता कहता है – 'नहीं बेटा ! मेरी भूल नहीं थी।' इसी अहंता के विष में ही सारा परिवार जलता रहता है। इस विषम विष 'मैं' को दूर कर दो, इससे तुम्हारा सारा परिवार भगवान् का घर बन जायेगा। विविध ताप – अनेक ताप जैसे राग–द्वेष, लड़ाई–झगड़ा, तू–तू, मैं–मैं – ये सब इसीलिए पैदा होते हैं। अगर 'अहं' को छोड़ना सीख जाओ तो सारा घर भगवद्धाम बन जाएगा। 'विषम विषय विष ज्वाल माल में, विविध ताप तापनि जु जरो।' संसार के विषय ही विषम विष हैं। अनादिकाल से विषम (भयानक) विष रूपी विषयों को अमृत मानकर हम इनका सेवन करते आये हैं किन्तु इनकी ज्वालाओं (प्रज्ज्वलित अग्नि) के मल यानि समूह के कारण हमें अनेक प्रकार के भयावह कष्टों से पीड़ित होना पड़ रहा है। आज तक इनका ताप हमें जला रहा है। विष खाने से एक ही जन्म में मृत्यु होती है किन्तु हमने विषय रूपी विषम विष जैसे अहंता–ममता, राग–द्वेष तथा पाँच प्रकार के इन्द्रिय विषयों यथा शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध का सेवन किया तो इसने हमारे अगणित जन्मों का भक्षण कर लिया। इन्हीं के कारण अनादिकाल से हम जन्म–मृत्यु के दुर्दान्त चक्र में पड़कर बारम्बार चौरासी लाख योनियों में भटकते रहे। भगवान् की अहैतुकी कृपा से इस बार हमें मानव देह की प्राप्ति हुई है किन्तु अनादिकाल के अभ्यास के कारण हम पुनः इन विषम विष रूपी विषयों को अमृत रूप समझकर इनके पान में दिन–रात मस्त हो रहे हैं। हे अनन्त करुणामयी राधारानी ! आपसे प्रार्थना है कि मैं मायामोहित जीव हूँ, इन विषयों के बाह्य आकर्षण से मैं अपनी रक्षा करने में असमर्थ हूँ। अब तो अतिशय कृपा करके आप ही इन विषम विष रूपी विषयों की ज्वाला से, इनके प्रलोभन से आप ही मुझे बचाइए, मेरी रक्षा कीजिये – **'दीनन हित अवतरी जगत में, दीन पालिनी हिय बिचरो।'**

जिस घर में सब लोग दीन बनते हैं, उस घर में अवश्य ही भगवान् का अवतार होता है। स्त्री अलग दीन बनती है, बच्चा अलग दीन बनता है, ऐसा घर निश्चय ही भगवान् का घर बन जाता है; उस घर का पालन साक्षात् राधारानी करती हैं – **'दास तुम्हारो आस विषय की**
हरो विमुख गति को झगरो।'

जहाँ सब दीनता के साथ रहते हैं, उस घर के सभी लोग राधारानी के दास बन जाते हैं। किन्तु हे राधे ! मेरा तो केवल नाम व वेष ही दास का है, यथार्थ में तो मैं संसार के विषयों से और पामर विषयी जीवों से सुख पाने की आशा किया करता हूँ, अतः मैं वास्तव में इन्हीं का दास बन गया हूँ एवं आपसे विमुख हो गया हूँ। हे दयामयी ! मेरी विमुख गति के इस जन्म–जन्मान्तर के झगड़े का तत्काल ही हरण कर लो और मुझे अपनी व अपने शरणागत भक्तों की शरण में रख लो।

कबहुँ तो करुणा करोगी श्यामा,
यही आस तेरे द्वार परो,
यही आस बरसाने परो,
यही आस गह्वरवन परो।

हे वृषभानुनन्दिनी ! अत्यन्त अपराधी होने पर भी मुझे यह विश्वास है कि तुम अनन्त वात्सल्यमयी हो, इस बरसाने धाम में तो सदा ही तुम्हारी अनन्त कृपा की वर्षा होती रहती है, तुम्हारी उसी अहैतुकी करुणा को प्राप्त करने के लिए तुम्हारी ही कृपा से मैं तुम्हारे द्वार बरसाने में, तुम्हारे निजी घर गह्वर वन में आ गया हूँ, हे कृपामयी ! मुझे अपने द्वार पर पड़ा रहने दो, यहाँ से कभी भी अलग मत करना एवं करुणा की वर्षा से सदा मुझे भिगोये रहना।

भक्ति–सार 'भक्त–संग'

बाबाश्री द्वारा कथित भागवत सप्ताह कथा से संकलित

वृत्रासुर ने अपने अन्तिम समय में जो चार श्लोक कहे, उसे वृत्र चतुःश्लोकी कहा जाता है। भगवान् को पाने की जो उत्कंठा वृत्रासुर में थी, वह उसकी वाणी से स्पष्ट होती है। पार्वतीजी के शाप से राजर्षि चित्रकेतु ही वृत्रासुर बने थे। इन्द्र से युद्ध करते समय इन्होंने जो चार श्लोक कहे, उनमें इन्होंने भक्तों के धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूपी पुरुषार्थ चतुष्टय का वर्णन किया है। महाप्रभु वल्लभाचार्य जी ने वृत्रासुर द्वारा कथित इन चार श्लोकों को अपने पुष्टि सिद्धान्त की नींव कहा है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि करना, इनको प्राप्त कर लेना मानव मात्र का कर्त्तव्य है किन्तु भक्तों के धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष अलग होते हैं एवं ज्ञानी पुरुषों के धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष अलग होते हैं।

वृत्रासुर ने कहा – **त्रैवर्गिकायासविघातमस्मत्–**
पतिर्विधत्ते पुरुषस्य शक्र ।

(श्रीभागवतजी ६/११/२३)

जो साधारण धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष हैं, उनमें भगवान् अपने भक्तों के धर्म को भी नष्ट कर देते हैं, अर्थ तथा काम को भी नष्ट कर देते हैं और फिर मोक्ष तो भक्त स्वयं ही नहीं चाहता है। इस तरह पुरुषार्थ चतुष्टय की सिद्धि नहीं हो पाती है। अब प्रश्न है कि जब भक्त के धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष नष्ट ही हो जाते हैं तो फिर उसका कल्याण कैसे होता है ? अब जैसे धर्म है तो एक बालक के लिए धर्म है माता–पिता की सेवा करे, स्त्री का धर्म है अपने पति की सेवा करे, शिष्य का धर्म है गुरु की सेवा करे, राजा का धर्म है प्रजाजनों की सेवा करे किन्तु भक्ति मार्ग में आने पर इन धर्मों का त्याग भी करना पड़ता है और भगवान् स्वयं इन धर्मों का त्याग करा देते हैं, अपने भक्त से इन धर्मों का नाश करा देते हैं। कौन से धर्म, लौकिक धर्म। लौकिक धर्मों को छोड़ने के बाद ही परम धर्म की प्राप्ति होगी। इसलिए इन धर्मों को तो भगवान् नष्ट करा देते हैं जैसे ब्रजगोपियाँ थीं, उनका जितना भी पातिव्रत धर्म था, भाई–बन्धुओं के प्रति धर्म था, सास–ससुर की सेवा करने का जो धर्म था तो भगवान् ने उनके मन का इस प्रकार हरण किया कि वह सारा धर्म छुड़वा दिया। इस प्रकार भगवान् अपने भक्त के लौकिक धर्म का भी नाश कर देते हैं तथा अर्थ(धन) का भी नाश कर देते हैं क्योंकि उन्होंने भागवत में ही स्वयं कहा है – **"यस्याहमनुगृह्णामि हरिष्ये तद्धनं शनैः" –** (श्रीभागवत १०/८८/८) मैं जिस पर कृपा करता हूँ, उसका अर्थ (धन) छीन लेता हूँ। इस तरह भगवान् अपने भक्त के पास न तो धर्म छोड़ते हैं, न अर्थ छोड़ते हैं तथा उसके काम को भी नष्ट कर देते हैं। यदि भक्त के मन में सांसारिक वस्तु–पदार्थों को पाने की कामना भी होती है तो भगवान् उसको नष्ट कर देते हैं। जैसे भागवत में ही सुदामा जी ने कहा है कि यदि कोई जीव भगवान् से धन चाहता है तो वे उसको धन नहीं देते हैं, उसकी धन की कामना को पूरा नहीं करते हैं क्योंकि – **अदीर्घबोधाय** – यह जीव जानता नहीं है, दूर तक नहीं देख सकता है कि धन से उत्पन्न होने वाला मद मेरा नाश कर देगा, धन से होने वाला मोह मेरा सर्वनाश कर देगा। जीव में तो इतनी बुद्धि नहीं है कि वह अपने होने वाले विनाश को समझ सके। इसीलिए तो हम लोग कामना करते हैं कि खूब धन मिल जाये, पद–प्रतिष्ठा मिल जाये, खूब सुख–समृद्धि मिल जाये। किन्तु जो चीजें हमारे अन्दर मद–मोह उत्पन्न करती हैं, उनकी कामना को भगवान् स्वयं ही पूरा नहीं करते हैं, कामनाओं का नाश कर देते हैं। इस तरह भगवान् अपने भक्त का धर्म भी नष्ट कर देते हैं, अर्थ एवं काम को भी नष्ट कर देते हैं। तब वह भक्त ऐसी स्थिति पर पहुँच जाता है कि मोक्ष को तो स्वयं ही छोड़ देता है। **'मुक्ति निरादर भक्ति लुभाने।'** ऐसी उसकी अवस्था हो जाती है। अब प्रश्न यह है कि शास्त्र में एक स्थान पर तो कहा गया है कि धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की सिद्धि करना आवश्यक है और दूसरे स्थान पर भगवान् स्वयं इनका नाश कर रहे हैं, ऐसी स्थिति में यह जीव बेचारा

क्या करेगा ? इसका उत्तर देते हुए महाप्रभु वल्लभाचार्यजी ने कहा कि वृत्रासुर ने अपने द्वारा कथित चार श्लोकों में वैष्णवों का धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष क्या है, इस तरह भक्तों का पुरुषार्थ बताया है। माता–पिता की सेवा करना, गुरुजनों की सेवा करना – ये तो सामान्य धर्म है। इनसे भी आगे जो धर्म है, वह है वैष्णवों का शरणागतिधर्म। वैष्णवों के धर्म के बारे में वृत्रासुर ने कहा – **अहं हरे तव पादैकमूल–**

दासानुदासो भवितास्मि भूयः ।

ये माँ–बाप हैं, हम इनकी सेवा करेंगे। ये बन्धु–बान्धव हैं, इनके प्रति हमारा जो कर्त्तव्य कर्म है, हम उसे करेंगे, यह तो छोटी बात है। वैष्णव का सबसे बड़ा धर्म है – **दासानुदासो भवितास्मि भूयः** – हे प्रभो ! हम आपके दास नहीं, आपके दासों के दास बन जाएँ अर्थात् दास धर्म वैष्णवों का परम धर्म है।

मदनगोपाल शरण तेरी आयो।
श्रीभट के प्रभु दियो अभय पद,
यम डरपयो जब दास कहायो ॥

सबसे बड़ा धर्म यही है –

मनः स्मरेतासुपतेर्गुणांस्ते
गृणीत वाक् कर्म करोतु कायः ॥

(श्रीभागवतजी ६/११/२४)

हम मन से आपका ही चिन्तन करें। शरीर से आपके लिए ही कर्म करें और वाणी सदा आपका ही गुणगान करे। यह वैष्णवों का धर्म है। केवल पति की सेवा करना, माता–पिता की सेवा करना – यह तो साधारण लोगों का धर्म है। भक्तों का धर्म यही है कि हमारे शरीर का प्रत्येक अवयव, हमारे शरीर की प्रत्येक इन्द्रिय भगवान् के लिए काम करे।

वैष्णवों का अर्थ क्या है ? वृत्रासुर से भगवान् ने कहा कि स्वर्ग ले ले, ब्रह्मलोक ले ले, योगियों की सिद्धि ले ले, और तो और मोक्ष ले ले। परन्तु वृत्रासुर ने कहा –

न नाकपृष्ठं न च पारमेष्ठ्यं
न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम् ।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा
समंजस त्वा विरहय्य काङ्क्षे ॥

(श्रीभागवतजी ६/११/२५)

न मुझे स्वर्ग का वैभव चाहिए, न मुझे सत्यलोक का वैभव चाहिए। भूमण्डल का साम्राज्य, रसातल का राज्य, योग की सिद्धि तथा मोक्ष भी मैं नहीं चाहता हूँ। मैं आपको छोड़कर और कुछ भी नहीं चाहता हूँ।

अतः वैष्णवों का एकमात्र अर्थ (धन) भगवान् और उनका नाम है। व्यासजी महाराज ने कहा – **परम धन राधा नाम आधार।** श्रीमीराजी ने कहा **– पायो जी मैंने राम रतन धन पायो।** भगवान् ही उनके अर्थ(धन) हैं। हम लोगों के लिए अर्थ द्रव्य है, पैसा है, नोटों की गड्डी है किन्तु वैष्णवों का अर्थ भगवान् है। वैष्णवों की कामना (काम) क्या है तो काम के विषय में वृत्रासुर ने कहा –

अजातपक्षा इव मातरं खगाः
स्तन्यं यथा वत्सतराः क्षुधार्ताः ।
प्रियं प्रियेव व्युषितं विषण्णा
मनोऽरविन्दाक्ष दिदृक्षते त्वाम् ॥

(श्रीभागवतजी ६/११/२६)

मन में कामना हो तो कैसी कामना करे। पद–प्रतिष्ठा, सुख–समृद्धि की कामना वैष्णवों की कामना नहीं है। वैष्णवों की कामना यह है जैसी कि वृत्रासुर ने इस श्लोक में कहा – हे प्रभो ! जैसे किसी चिड़िया का पंखहीन बच्चा अपनी माँ से मिलने के लिए छटपटाता है, जैसे भूखा बछड़ा अपनी माँ गाय से मिलने के लिया छटपटाता है, कोई वियोगिनी पत्नी, जिसे अपने प्रवासी पति से मिले कई वर्ष हो गये हैं, वह वियोगावस्था में जिस प्रकार अपने पति से मिलने के लिए व्याकुल रहती है, वैसे ही मैं भी आपसे मिलने के लिए तड़प रहा हूँ।

भगवान् से मिलने की उत्कंठा, ऐसी लालसा हमारे मन में आ जाये, यही वैष्णवों की कामना है। यही काम होना चाहिए किन्तु यह काम(कामना) कब आयेगा ?

छूटी त्रिबिधि ईषना गाढ़ी।
एक लालसा उर अति बाढ़ी ॥
राम चरन बारिज जब देखौं।

तब निज जन्म सफल करि लेखौं ।।

(श्रीरामचरितमानसजी –११०)

जब सांसारिक कामनाओं से हम लोग मुक्त हो जायेंगे तब भगवत्प्राप्ति की छटपटाहट, भगवान् से मिलने की कामना हमारे अन्दर आ जाएगी। इस तरह अब वैष्णवों का धर्म समझ में आ गया, अर्थ समझ में आ गया, काम समझ में आ गया तो क्या अब वैष्णवों का मोक्ष भी अलग है। वृत्रासुर ने कहा – हाँ, वैष्णवों का मोक्ष भी अलग है। वैष्णवों का मोक्ष क्या है तो उसके बारे में वृत्रासुर ने कहा –

ममोत्तमश्लोकजनेषु सख्यं संसारचक्रे भ्रमतः स्वकर्मभिः ।
त्वन्माययाऽऽत्मात्मजदारगेहेष्वासक्तचित्तस्य न नाथ भूयात् ।।

(श्रीभागवतजी ६/११/२७)

ज्ञानियों को मोक्ष मिलता है मृत्यु के बाद परन्तु भक्तों को जीते जी ही मोक्ष मिल जाता है। ये कैसी मुक्तावस्था है, जो जीते जी ही मिल जाती है तो वृत्रासुर ने कहा – प्रभो ! मुझे यह तो पता है कि अब मैं मरने वाला हूँ और मैं यह भी नहीं चाहता कि आपसे कहूँ कि मुझे पुनर्जन्म नहीं मिले। मैं ऐसी प्रार्थना भी नहीं करता। **'कुटिल कर्म लै जाहिं मोहि जहाँ अपनी बरिआई'** मेरे कुटिल कर्म, मेरे विकर्म, मेरी आसुरी वृत्ति यदि मुझे नरक में भी ले जाना चाहे तो मैं वहाँ भी प्रसन्न रहूँगा, मुझे नरक से कोई आपत्ति नहीं है। बस एक प्रार्थना है, मृत्यु के बाद मेरा जहाँ भी जन्म हो, सांसारिक लोगों से मेरा कोई सम्बन्ध न रहे। भक्तों के बीच में ही जन्म हो, भक्तों से ही मेरा सम्बन्ध रहे, भक्तों में ही मेरा सख्य भाव रहे, भक्त ही मेरे सब कुछ हों। संसारी लोगों में मेरी आसक्ति न हो, जितनी भी आसक्ति हो, वह केवल भक्तों में ही हो। भक्त संग की प्राप्ति के लिए यदि मुझे हजार बार भी जन्म लेना पड़े तो मैं हजार बार भी जन्म लेने के लिए तैयार हूँ।

जिन भक्तों के हृदय में यह भावना दृढ़ हो गयी कि भगवान् ही हमारे सब कुछ हैं, भगवान् के भक्त ही हमारे सब कुछ हैं और उन भक्तों के बीच में बैठकर हम दिन–रात भगवान् की कथा–कीर्तन में ही तन्मय रहें, बस यही भक्तों का मोक्ष है। ज्ञानियों के धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष से भक्तों का धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष अलग है।

वृत्रासुर के पूर्व जन्म के बारे में श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि ये पहले चित्रकेतु नाम के महात्मा थे, उन्होंने शिवजी को टोक दिया तो पार्वतीजी ने उन्हें शाप दे दिया था किन्तु कितने क्षमाशील थे वे। वे अपने विमान से नीचे उतरकर नीचे आये और सिर झुकाकर पार्वतीजी को प्रसन्न करने के लिए बोले – अम्बिके ! मैं आपके शाप को ग्रहण करता हूँ क्योंकि जो कुछ भाग्य में लिखा होता है, वही होता है। **"नैवात्मा न परश्चापि कर्ता स्यात् सुखदुःखयोः"** – (श्रीभागवतजी ६/१७/१९) कोई किसी को सुख–दुःख नहीं देता है। यह तो अपने ही कर्म का फल होता है। **काहु न कोउ सुख दुख कर दाता। निज कृत करम भोग सब भ्राता ।।** (श्रीरामचरितमानसजी, अयोध्याकाण्ड – ९२) इस संसार में क्या तो शाप और क्या वरदान ? एक भगवान् ही सब कुछ हैं। हे देवि ! मैं चाहता हूँ कि आप मुझ पर प्रसन्न हो जाइये। मैं इसलिए आपको प्रणाम नहीं कर रहा हूँ कि आप मेरे शाप को हटा दीजिये। मेरे द्वारा आप दोनों (शिव–पार्वती) को जो कटु वाक्य कहे गये, उसे आप क्षमा कर दीजिये। मुझे आसुरी योनि में जाने पर भी कुछ भय नहीं है। शुकदेवजी कहते हैं – चित्रकेतु भगवान् शिव और पार्वतीजी को इस प्रकार प्रसन्न करके उनके सामने ही विमान पर सवार होकर वहाँ से चले गये। इससे पार्वतीजी को बड़ा आश्चर्य हुआ। भगवान् शंकर ने कहा – देवि ! तुमने भगवान् के दासों की महिमा देखी। **नारायणपराः सर्वे न कुतश्चन बिभ्यति –** (श्रीभागवतजी ६/१७/२८) जो भगवद्भक्त होते हैं, वे कभी डरते नहीं हैं। उन्हें स्वर्ग, नरक और मोक्ष – सभी में एक ही वस्तु, केवल भगवान् के ही समान भाव से दर्शन होते हैं। भगवान् के स्वरूप को न मैं जानता हूँ, न ब्रह्माजी, न नारद और न ही सनत्कुमार। इसलिए कोई आश्चर्य मत करो महापुरुष भगवान् के भक्तों के सम्बन्ध में। भगवान् शिव के वचन सुनकर देवी उमा शांत हो गयीं। चित्रकेतु में भी इतनी शक्ति थी कि वह बदले में पार्वतीजी को शाप दे सकता था किन्तु उसने उन्हें शाप न देकर उनका शाप सिर चढ़ा लिया। साधु का लक्षण यही है कि मस्तक झुकाकर सबके दोषों, अपराध, अत्याचार आदि को सह ले। यही चित्रकेतु आगे चलकर वृत्रासुर बना था।

भक्त–आसक्ति से भव–मुक्ति

कपिल भगवान् बोले – 'आध्यात्मिक योग से ही जीव का कल्याण होता है ।' हम सब लोग अपने को आध्यात्मिक समझते हैं किन्तु आध्यात्मिक किसे कहते हैं, इसे समझो । भगवान् कपिल ने कहा कि अध्यात्म योग में मनुष्य का प्रवेश तभी होता है जब दुःख और सुख से मनुष्य की अत्यन्त उपरति हो जाती है । न तो उसे दुःख व्यापता है और न सुख में प्रसन्नता होती है । तब उसका अध्यात्म योग में प्रवेश होता है । बात बनाना तो अलग है लेकिन अगर किसी के घर में मौत हो जाए या कोई रोग हो जाए अथवा धन का गम्भीर घाटा हो जाए तो सबके चेहरे उदास हो जायेंगे । अतः अभी तो हमलोगों का आध्यात्मिक योग में प्रवेश ही नहीं हुआ है, शुरुआत ही अभी नहीं हुई है और भगवान् कपिल ने जो अपने उपदेश का सबसे पहला श्लोक बोला, वह यही बोला कि यदि तुम्हें आध्यात्मिक योग में प्रवेश पाना है तो उसके लिए पहली आवश्यकता यह है कि तुम सुख–दुःख से ऊपर उठ जाओ । ईश्वर प्रेम भी इसी को कहते हैं कि जो कुछ भी हमारा प्यारा कर रहा है, हम उसी में सुखी रहें किन्तु संसार के लोग तो जरा–जरा सी बात पर दुखी होते रहते हैं कि चार पैसे का घाटा हो गया, बेटा–बेटी बीमार हो गए ।

कपिल भगवान् ने कहा –

योग आध्यात्मिकः पुंसां मतो निःश्रेयसाय मे ।
अत्यन्तोपरतिर्यत्र दुःखस्य च सुखस्य च ॥

(श्रीभागवतजी ३/२५/१३)

भगवान् ने यह पहला ज्ञान अपनी माँ को दिया । इसके बाद भगवान् बोले कि यह चित्त ही बन्धन कराता है और चित्त ही मुक्ति कराता है । कोई दूसरा नहीं कराता है ।

चेतः खल्वस्य बन्धाय मुक्तये चात्मनो मतम् ।
गुणेषु सक्तं बन्धाय रतं वा पुंसि मुक्तये ॥

(श्रीभागवतजी ३/२५/१५)

'चेतः' माने चित्त । चित्त किसे कहते हैं, इसे समझो । हम लोगों का चित्त बन्धन क्यों करा रहा है ? चित्त की परिभाषा है – **'चिनोति आत्मनि मलं इति चेतः'**

हम लोगों का चित्त केवल गंदगी, मल–मूत्र का भोग इकट्ठा कर रहा है, इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं करता । जबकि जो महापुरुषों का चित्त होता है, वह क्या करता है – **'चिनोति आत्मनि भगवत्तत्वम्'**

उनका चित्त श्रीकृष्ण को इकट्ठा करता है । **चिनोति आत्मनि श्रीकृष्ण तत्त्वम्** – तत्त्वं से अभिप्राय है श्रीकृष्ण तत्त्व । इस हिसाब से महापुरुषों का चित्त भी चित्त है और हमारा चित्त भी चित्त है लेकिन इकट्ठा करने वाली जो वस्तु है, वह अलग–अलग है । कोई हीरा इकट्ठा कर रहा है और कोई मल–मूत्र इकट्ठा कर रहा है । इसे चित्त कहते हैं । यही मन है । जो बात देवहूतिजी ने कही थी, उसी सिद्धान्त को भागवत ३/२५/२० में भगवान् दोहरा रहे हैं –

प्रसङ्गमजरं पाशं आत्मनः कवयो विदुः ।
स एव साधुषु कृतो मोक्षद्वारं अपावृतम् ॥

(श्रीभागवतजी ३/२५/२०)

आसक्ति आत्मा का अजर बन्धन है, ऐसा विवेकी जन मानते हैं । जैसे स्त्री–पुरुष की परस्पर कामासक्ति होती है, वह बन्धन है । किन्तु वही आसक्ति यदि महापुरुषों के प्रति हो जाती है तो मोक्ष का दरवाजा खुल जाता है ।

महापुरुष भी कर्दम जी जैसा होना चाहिए, गड़बड़ी तभी होती है जब हम जैसे लोग अपने मल–मूत्र के शरीर को घोषित करते हैं कि हम महापुरुष हैं । आसुरी भाव में हम लोग जो महापुरुष होने का ढोंग करते हैं, गड़बड़ी वहीं से शुरू होती है । यह बात खोल के इसलिए समझाई जा रही है ताकि हम लोग महापुरुषों की महिमा को जानें, दुरूपयोग के लिए नहीं ऐसा कहा जा रहा है । इस बात को लोग छिपाते हैं । यह छिपाने की बात नहीं है, महापुरुषों की महिमा हम लोग नहीं जानेंगे तो भक्ति कैसे जानेंगे ? **राम ते अधिक राम कर दासा** – महापुरुष की महिमा तो तुम्हें जानना ही होगा, इसे छिपाने से क्या होगा ?

आगे कपिल भगवान् कहते हैं कि साधु कैसे होते हैं ?

तितिक्षवः कारुणिकाः सुहृदः सर्वदेहिनाम् ।

अजातशत्रवः शान्ताः साधवः साधुभूषणाः ।।

(श्रीभागवतजी ३/२५/२१)

वे अजातशत्रु होते हैं, शान्त होते हैं। तीन गुण भौतिक बताये तथा चार गुण आध्यात्मिक बताये। आध्यात्मिक भी कई गुण बताये हैं। इन गुणों की संख्या वल्लभाचार्यजी ने अपनी भागवत की टीका में बहुत अच्छी लिखी है।

भगवान् कहते हैं कि महापुरुष लोग हर समय मेरी कथा को सुनते और कहते हैं, वे कृष्ण–संग से इतर (बाहर) नहीं जाते हैं। जो व्यक्ति कृष्ण संग से इतर जाएगा, वह तो धोखा खा जाएगा, चाहे कोई आचार्य हो चाहे गोस्वामी हो, कृष्ण चर्चा से जो इतर है, उसका तो पतन निश्चित है। अब आगे भगवान् भक्ति का लक्षण बता रहे हैं।

देवानांगुणलिङ्गानामानुश्रविककर्मणाम्।
सत्त्व एवैकमनसो वृत्तिः स्वाभाविकी तु या ।।

(श्रीभागवातजी ३/२५/३२)

यहाँ देवानां का अर्थ है इन्द्रियाँ। यद्यपि देव शब्द का अर्थ होता है देवता। हमारी जो ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ हैं, ये बिना प्रयास के कृष्ण में लगी रहें, इसी का नाम भक्ति है। हमारा जो मन है तथा ज्ञानेन्द्रियाँ हैं जैसे आँख से देखना, कान से सुनना, जीभ से बिना कोशिश के ही भगवन्नाम निकलता रहे, जैसे गोपियों के बारे में लिखा है –

या दोहनेऽवहनने मथनोपलेप
प्रेङ्खेङ्खनार्भरुदितो–क्षणमार्जनादौ।
गायन्ति चैनमनुरक्तधियोऽश्रुकण्ठ्यो
धन्या व्रजस्त्रिय उरुक्रमचित्तयानाः ।।(श्रीभागवतजी १०/४४/१५)

हर कार्य को करते समय, बिना प्रयत्न के ही उनकी वाणी से हर समय कृष्ण गुणगान होता रहता था। हम लोगों को तो अभी भक्ति में मन लगाना पड़ता है कि इतनी देर माला करेंगे, इतनी देर कीर्तन करेंगे किन्तु ऐसा अभ्यास पड़ जाना चाहिये कि अपने आप जीभ सदा भगवन्नाम लेती रहे। कर्मेन्द्रियाँ भी अपने आप ही कृष्ण में लगें, मन भी अपने आप कृष्ण में लगे, उसका नाम भक्ति है यानी लगाना न पड़े, स्वयं ही बिना प्रयास के कृष्ण में लगा रहे उसका नाम भक्ति है। वल्लभाचार्य जी ने देवानां का बड़ा सुन्दर अर्थ किया है। वे लिखते हैं कि जो इन्द्रियाँ कृष्ण में लगती हैं, वे तो देव हैं, वहाँ उन्होंने उपनिषदों का भी प्रमाण दिया है। जो इन्द्रियाँ कृष्ण में नहीं लग रही हैं, वे असुर हैं। इसीलिए यहाँ पर देवानां लिखा है। ग्यारह इन्द्रियाँ हैं, अब यहाँ पर एक प्रश्न उठता है और यह आचार्यों ने लिखा है कि आँख से दर्शन करेंगे, कान से कथा सुनेंगे, वाणी से कीर्तन करेंगे, हाथ से सेवा करेंगे अर्थात् सभी ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ तो कृष्ण भक्ति में लग जायेंगी किन्तु मल–मूत्र की इन्द्रिय भगवान् की सेवा में कैसे लगेगी ? आचार्य कहते हैं कि मल–मूत्र की इन्द्रिय भी कृष्ण में लगेगी, कैसे लगेगी ? विष्णुधर्मोत्तर पुराण में लिखा है – **मलमूत्रपरित्यागाद्यित्तस्वास्थ्यं यतो भवेत्।**

अतः पायुरुपस्थश्च तदाराधनसाधनम् इति

मल–मूत्र की इन्द्रिय यदि गड़बड़ करती है तो शरीर का स्वास्थय खराब हो जाता है। यदि शौच न हो तो दूषित वायु निकलती रहेगी और भगवान् में भी मन नहीं लगेगा। इसलिए मल–मूत्र की इन्द्रिय को भी संयम चाहिए, उपस्थ इन्द्रिय को भी संयम चाहिए, नहीं तो अधिक भोग के कारण कृष्ण से विमुख हो जाओगे, प्रह्लादजी ने यह बात कही है। अतः इन्द्रियों का संयम करना ही, इन्हें कृष्ण में लगाना है। श्रीभागवतजी ३/२५/३२ में सत्त्व का अर्थ मन है। वल्लभाचार्यजी ने लिखा है कि दो प्रकार की इन्द्रियाँ है – देवरूपाणि, असुररूपाणि – '**एकानि देवरूपाणि एकान्यसुररूपाणि।**' भगवद्भक्ति में लगने वाली इन्द्रियाँ देवरूपाणि हैं। भक्ति कैसी होनी चाहिए, अनिमित्त निष्काम होनी चाहिए। किसी मतलब से भक्ति नहीं करनी चाहिए। **अनिमित्ता भागवती भक्तिः सिद्धेर्गरीयसी –**(श्रीभागवतजी ३/२५/३३)

ऐसी भक्ति मुक्ति से भी बड़ी है। मुक्ति से कैसे बड़ी है ? इस तरह बड़ी है कि क्या भगवान कभी किसी ब्रह्मज्ञानी का रथ हाँकने गए हैं, केवल अर्जुन का ही रथ उन्होंने हाँका था। क्या भगवान किसी ब्रह्मज्ञानी की सेवा करने गए हैं किन्तु ब्रज में गोपी कहती है – कन्हैया, मेरी गोबर

की हेल उँचा जा, गगरी उँचवा जा, मैं तुझे माखन का लौंदा दूँगी। कन्हैया पूछते हैं कि कितने लौंदा देगी ? गोपी कहती है जितनी हेल उँचवायेगा, उतना लौंदा दूँगी। कन्हैया ने पूछा कि मुझे कैसे पता पड़ेगा कि कितनी हेल उँचवायी। गोपी बोली – जितनी हेल उँचवायेगा, उतना गोबर का ठप्पा तेरे गाल पर लगा दूँगी। कृष्ण बोले – ठीक है। शर्त मंजूर है। गोपी ने कहा कि बेईमानी नहीं होनी चाहिए। अब कन्हैया ने गोबर की हेल उँचवाई तो गोपी ने एक ठप्पा उनके गाल पर लगा दिया और बोली कि अब तुझे एक लौंदा मिल जाएगा। जब दो–चार हेल हो गयी तो कन्हैया ने कुछ बेईमानी की और एक–दो ठप्पा गाल पर अपनी ओर से अधिक लगा लिए ताकि माखन ज्यादा मिल जाए। गोपी ने देखा तो बोली – लाला, बेईमानी करता है, अब एक भी लौंदा नहीं मिलेगा, मैंने तो ६ हेल गिन रखे हैं और तूने तीन अपनी ओर से बढ़ा लिए।

अब श्रीकृष्ण इस तरह क्या किसी ब्रह्मज्ञानी की दासता कर सकते हैं ? ग्वाललीला में कृष्ण श्रीदामा को अपने कंधे पर बिठाकर ले जाते हैं, क्या कभी किसी ब्रह्मज्ञानी को भगवान् ने अपने कंधे पर बिठाया है। इसीलिए कपिल भगवान् कहते हैं कि भक्ति मुक्ति से भी बड़ी है। **'अथो विभूतिं मम मायाविनस्तामैश्वर्यमष्टांगमनुप्रवृत्तम्'** – (श्रीभागवतजी ३/२५/३७) सत्य आदि लोक की विभूति भी उन्हें मिल जाती है। मेरे वैष्णव धाम का ऐश्वर्य भी उन्हें स्वतः प्राप्त हो जाता है। **'न कर्हिचिन्मत्पराः शान्तरूपे नङ्क्ष्यन्ति नो मेऽनिमिषो लेढि हेतिः।'** काल मेरे भक्तों को नहीं चाट सकता है। वे काल के ऊपर उठ जाते हैं। जो भगवान् की भक्ति करता है, काल उसका कुछ नहीं कर सकता, कैसे भक्त ? जिनका मैं ही सब कुछ हूँ। **'येषामहं प्रिय आत्मा सुतश्च सखा गुरुः सुहृदो दैवमिष्टम् ॥'** (श्रीभागवतजी ३/२५/३८) मैं ही जिनका प्रिय हूँ (जैसे लक्ष्मीजी के प्रिय हैं भगवान्)। मैं ही जिनका आत्मा हूँ (जैसे सनकादिक मुनियों की आत्मा हैं भगवान्)। मैं ही जिनका बेटा हूँ, (जैसे यशोदाजी के बेटा हैं भगवान्)। मैं ही सखा हूँ, (जैसे अर्जुनजी के सखा हैं भगवान्) मैं ही पिता हूँ (प्रद्युम्न के पिता श्रीकृष्ण हैं), मैं ही सुहृद हूँ (जैसे पाण्डवों के सुहृद थे), मैं ही भक्तों का दैव हूँ, मैं उनका सब कुछ हूँ। मैं ही गुरु हूँ। ऐसे भक्तों का काल कुछ नहीं बिगाड़ सकता है।

विसृज्य सर्वान् अन्यांश्च मामेवं विश्वतोमुखम्।
भजन्ति अनन्यया भक्त्या तान्मृत्योरतिपारये ॥

(श्रीभागवतजी ३/२५/४०)

जो भक्त मेरे लिए अपना घर, धन, पशु तथा अन्य सभी वस्तुओं को छोड़ देते हैं, उन्हें मैं मृत्युरूप संसार सागर से पार कर देता हूँ। भगवान् के लिए सब कुछ छोड़ना पड़ता है तभी तो चैतन्य महाप्रभु ने कहा है–

'बिना सर्वत्यागं न हि भवति भजनं यदुपतेः'

सर्वत्याग के बिना कृष्ण भजन नहीं हो सकता है। भगवान् कहते हैं कि जो मेरे लिए सब कुछ छोड़ देता है, **तान्मृत्योरतिपारये** – उसे मैं अपने कंधे पर उठाकर मृत्यु के पार ले जाता हूँ, **अतिपारये** – पार ही नहीं अतिपार अर्थात् बड़े लाड़–प्यार से ले जाता हूँ।

राजस्थान पत्रिका

इंडिया बुक रिकॉर्ड के बाद अब एशिया बुक ऑफ रिकॉर्ड्स में शुमार हुआ 16 साल का आयुष

पत्रिका न्यूज नेटवर्क
patrika.com

डीग. जज्बा हो जब आसमा को छूने का तो हौसला खुद-ब-खुद आ ही जाता है। ऐसा ही कुछ कर दिखाया 16 साल के आयुष ने। कागज पर कलाकारी दिखाने का हुनर रखने वाले आयुष की मेहनत ऐसी रंग लाई कि इंडिया बुक ऑफ रिकॉर्ड के बाद अब उसके इस हुनर को एशिया बुक ऑफ रिकॉर्ड में शुमार कर लिया गया है। शहर के मेला मैदान माहेश्वरी मोहल्ला शिव मंदिर के पास रहने वाले 11वीं कक्षा के छात्र आयुष सोनी ने कहा कि माता-पिता को झाड़ंग बनाते देखता तो मेरे मन में भी इस क्षेत्र में कुछ नया कर दिखाने की हसरत रहती। रफ्ता-रफ्ता इस क्षेत्र में मन रम गया। पढ़ाई के साथ लगन कुछ ऐसी लगी कि डेढ़ माह तक सब कुछ भूल गया और जुट गया कागज पर कलाकारी दिखाने में। मेहनत ऐसी रंग लाई कि इस हुनर को इंडिया बुक ने अपने रिकॉर्ड में शुमार लिया।

डीग. एशिया बुक ऑफ रिकॉर्ड के साथ आयुष।

पिता और मां भी करते रहते हैं झाड़ंग

आयुष सोनी ने बताया कि उसके पिता मुकेश सोनी सर्राफा व्यवसायी हैं और झाड़ंग का शौक रखते हैं। काम से फुर्सत मिलने पर वह इसमें हाथ आजमाते हैं। साथ ही मां डिम्पल सोनी गृहिणी होने के बाद भी इस शौक को जिंदा रखती हैं। मां पेंसिल के साथ झाड़ंग करती हैं। सोनी टावर में 11वीं कक्षा में पढ़ने वाले आयुष ने पूर्व में पेपर कटिंग पर जाली के जरिए भगवान श्रीकृष्ण को उकेरा है। यह हुनर उन्होंने सिंगल पेपर पर दिखाया है। आयुष ने बताया कि 15 दिन इसकी झाड़ंग करने में लगे और एक माह इसकी कटिंग में लगा।

कटिंग करने के बाद इसे इंडिया बुक ऑफ रिकॉर्ड के लिए भेजा गया जिसे इंडिया बुक ऑफ रिकॉर्ड ने उसे अपने रिकॉर्ड में शामिल किया। आयुष ने बताया कि उसने यह कटिंग बड़ी सावधानी के साथ राजीकल ब्लेड से की है। नवंबर माह में इंडिया बुक ऑफ रिकॉर्ड मिलने के महज एक माह बाद ही दिसंबर माह में आयुष को उसकी कलाकारी के लिए अब एशिया बुक ऑफ रिकॉर्ड मिला है। आयुष सोनी को एशिया बुक ऑफ रिकॉर्ड मिलने से परिवारीजन तथा क्षेत्र के लोगों में हर्ष का माहौल है।

'स्पृहाशून्य जन' ही स्थितप्रज्ञ

बाबाश्री के श्रीमद्भगवद्गीता–सत्संग (६/२/२०१२) से संकलित

काम का दूसरा नाम है – राग, क्रोध तथा लोभ; ये तीनों पर्यायवाची हैं। क्रोधी आदमी से सबको भय लगता है। काम, क्रोध तथा लोभ और राग, भय व क्रोध – ये सब एक ही चीजें हैं; ये बुद्धि को चंचल बनाते हैं। लोभी आदमी के अन्दर भय छिपा रहता है। तुम्हारे पास यदि धन है और चंदा माँगने वाले आ जाएँ तो तुम्हे भय लगेगा कि कहीं ये मुझसे चन्दा न माँगने लगें। अतः लोभ में भय है। इसीलिए ये विकार मन को चंचल बनाते हैं। जब तक राग, भय और क्रोध हैं; तब तक बुद्धि स्थिर नहीं हो सकती। जब राग, भय व क्रोध चले जायेंगे तब बुद्धि स्थिर हो जायेगी। जिसके राग, भय व क्रोध समाप्त हो गये, उसको 'मुनि' कहते हैं, ऐसा व्यक्ति 'मुनि' बन गया। राग, भय व क्रोध जाने के बाद भगवान् की भक्ति मिल जाती है। भगवान् ने इस बात को कहा है –

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते॥

(श्रीगीताजी ४/१०)

राग, भय व क्रोध यदि नष्ट हो जाएँ तो बुद्धि कृष्णमय हो जायेगी और भगवान् का आश्रय सिद्ध हो जाएगा। उसके पहले जीव भगवान् की शरण में नहीं रहता क्योंकि राग, भय व क्रोध उसे भगवान् की शरण से हटा देते हैं। तुम्हारा राग यदि धन में है तो मन 'धन' में चला जाएगा। राग यदि भोग में है तो मन स्त्री या पुरुष में चला जाएगा, भगवान् से मन हट जाएगा। इसलिए तुम मन्मय अर्थात् कृष्णमय नहीं बन सकते, जब तक तुम्हारे अन्दर राग, भय व क्रोध हैं; इनके रहते तुम कृष्णमय नहीं हो सकते, भगवान् का आश्रय नहीं हो सकता है। राग,भय व क्रोध 'भगवान्' का आश्रय हटा देते हैं। मन को चंचल करके वहाँ से हटा देते हैं। भय की वृत्ति आई तो मान लो कि तुम्हारे घर में सर्प घुस आया, अब जब तक सर्प चला नहीं जाएगा तब तक तुम्हारे मन में भय बना रहेगा और उसी का ध्यान होता रहेगा। तुम्हारा कोई शत्रु है, जिसके प्रति द्वेष अथवा क्रोध है, जब तक वह हट नहीं जाता, मर नहीं जाता, तुम्हारा मन उसी की ओर जाता रहेगा। मान लो तुम्हारा राग 'स्त्री व बच्चों' में है तो मन बार–बार उधर ही जाएगा, अतः कृष्ण में मन लगाने के लिए भगवान् स्वयं कहते हैं कि राग, भय व क्रोध हटा दो फिर मन्मय हो जाओगे और मेरा आश्रय सिद्ध हो जाएगा। कोई कहे कि ऐसा करना कठिन है तो भगवान् कहते हैं नहीं, **'बहवो ज्ञान तपसः पूता'** ज्ञान रूपी तपस्या से तुम पवित्र हो जाओगे। ज्ञान–तप क्या है, यह वही है जो भगवान् ने गीता में कहा है, अपने विकारों को जानना, अपने मन को जानना, अपने मन की स्थिति को देखना, अपने मन की चंचलता को समझना; यह ज्ञान–तप है। जब ज्ञान रूपी तप से पवित्र हो जाओगे तब कृष्णभाव को प्राप्त होगे, उसके पहले **'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।'** गीता (४/११) तुम्हारी जैसी शरणागति है, उसी रूप में भगवान् तुमको मिलेंगे। **'मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः॥'** भगवान् कहते हैं कि संसार के सभी मनुष्य मेरे ही रास्ते पर तो चल रहे हैं, वे आनंद चाहते हैं, सुख चाहते हैं; यह 'आनंद–सुख' भगवान् का स्वरूप है। यह श्लोक ४/११ बड़ा विचित्र है। प्रश्न उठता है कि सब मनुष्य भगवान् के रास्ते पर कैसे चल रहे हैं क्योंकि भगवान् ने कहा है कि सभी मनुष्य मेरे रास्ते पर चल रहे हैं। कहा जाए कि भगवान् का रास्ता तो भगवान् का भजन है और सभी आदमी भगवान् का भजन नहीं कर रहे हैं तो भगवान् बोले कि सभी करते हैं, अन्तर इतना है कि किसी ने आनंद का रास्ता भोग को समझ लिया है तो वह भोग को ही भगवान् मानता है। कोई पैसे को भगवान् मान लेता है, अतः जैसी जिसकी प्रपत्ति (शरणागति) होती है, उसी रूप में उसको 'भगवान्' मिलते हैं। जिसने 'भगवान्' को भोग मान लिया कि भगवान् 'भोग' में मिलता है अर्थात् भोग में आनंद है तो उसके लिए भगवान् मृत्यु रूप हो जाते हैं। तुम्हारी जैसी शरणागति

है **'ये यथा मां.....'** उसी रूप में तुमको भगवान् मिलते हैं क्योंकि 'भोग' मृत्यु है।

भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम् ।
व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते ॥

(श्रीगीताजी २/४४)

इसलिए जब तुम मृत्यु का रास्ता पकड़ लेते हो तो भगवान् क्या करें, 'भगवान्' उसी मृत्यु के रूप में तुमको प्राप्त हो जायेंगे। 'ये यथा मां.....भजाम्यहम्' इसमें सब आ गए – भोगी, लोभी, चोर–डाकू, हत्यारे आदि। उनकी शरणागति गलत ढंग की है। 'ये यथा मां प्रपद्यन्ते।' यथा – जिस प्रकार की उनकी शरणागति है, यानि शरणागति भी अलग–अलग ढंग की होती है। सही शरणागति तो जब संत–महात्माओं के पास जाओ, तब वे समझाते हैं। भोगैश्वर्यप्रसक्तानां..... । (श्रीगीताजी २/४४) भोगैश्वर्य से तो बुद्धि 'भगवान्' से दूर जाती है। सही शरणागति 'यथा मां प्रपद्यन्ते' 'यथा प्रपत्ति, सच्ची प्रपत्ति' तो संत लोग बतायेंगे, भक्त लोग बतायेंगे, इसलिए यहाँ पर जो भगवान् ने कहा कि मन चंचल होता है, वह एकमात्र कामना के कारण होता है। **'प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान्'** – (श्रीगीताजी २/५५) जब मनुष्य सभी कामनाओं को छोड़ देता है। 'मनोगतान्' माने मन में ही सभी कामनाएँ रहती हैं। सब गड़बड़ियाँ मन की हैं। **'चंचलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्द्रढम् ।'** काम कहाँ रहता है, मनोगतान् अर्थात् मन में रहता है, उसको जब छोड़ दिया, **'आत्मन्येवात्मना तुष्टः'** अपने आप अपने में संतुष्ट हो गया तो 'स्थितधीः' बन जाएगा, उसकी प्रज्ञा स्थित हो जाएगी और स्थित हो जाने से उसको योग की प्राप्ति हो जाएगी; योग ही नहीं, उसको 'भगवान्' मिल जायेंगे। भगवान् ने स्पष्ट कहा है कि मन को मेरे में लगा दो और मैं मिल जाऊँगा।

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय ।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः ॥

(श्रीगीताजी १२/८)

निश्चय है... सशंय नहीं है... इस बात को ब्रह्मा भी नहीं हटा सकता, भगवान् कहते हैं कि तुम अपने मन–बुद्धि को मेरे में लगा दो और फिर तुम मुझमें निवास करोगे। आफत की जड़ 'मन' है, चंचलता की जड़ 'मन' है। मन को राग, भय व क्रोध से हटा करके 'भगवान्' में लगा दो तो वह तुमको मिल जायेंगे। इसलिए यहाँ पर (गीता २/५४ में) जो स्थितप्रज्ञ की चर्चा की गयी है, वह कैसे बने । इसके लिए भगवान् ने इस श्लोक (गीता २/५५) में बताया – 'प्रजहाति यदा कामान्' – मनुष्य जब कामनाओं को छोड़ देता है और आत्मसंतुष्ट रहता है, उसी समय वह स्थितप्रज्ञ हो जाता है।

श्लोक – ५६

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः ।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥

(श्रीगीताजी २/५६)

यह श्लोक 'वीतरागभय क्रोधः' गीता में कई जगह आता है, गीता ४/१० में भी आता है; यह 'भगवान्' से मिला देता है। राग, भय, क्रोध – ये तीनों चले जाएँ, इसकी पहचान क्या है ? 'दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः' – दुःख में उसको घबराहट नहीं होती है, 'दुःख' माने हानि–लाभ और 'सुखेषु' – सांसारिक सुखों की प्राप्ति में उसकी स्पृहा (इच्छा) नहीं होती है। सामने रबड़ी है तो भी वह नहीं खायेगा, इच्छा नहीं होगी। 'विगतस्पृहः' – सामने भोग है लेकिन नहीं भोग रहा है; भोग की प्राप्ति में भी उसको इच्छा नहीं होती है। ये पहचान है कि उसके हृदय से राग, भय व क्रोध चले गए और वह 'स्थितधी' हो गया, उसकी बुद्धि स्थित हो गयी। जिसको दुःखों में घबराहट नहीं हैं, अप्राप्ति में क्रोध आदि नहीं है और प्राप्त वस्तुओं में इच्छा नहीं हो रही है तो उसकी बुद्धि स्थित हो गयी। आँख बंद करके उसको 'स्थितप्रज्ञ' मान लो और जब 'स्थितप्रज्ञ' हो गया तो उसकी योग में स्थिति मान लेनी चाहिए।

असंगता की पहिचान 'समत्व भाव'

'स्थितप्रज्ञ' को ही योग की प्राप्ति होती है। वह भगवान् से मिलता है, उसकी प्रज्ञा (बुद्धि) स्थिर हो गयी है – ये कैसे होवे ? इसके लिए भगवान् ने कहा कि पहली बात तो यह है कि कामनाएँ मनुष्य को चंचल करती हैं। **'प्रजहाति यदा कामान्'**, सर्वान् कामान् – जितनी भी कामनाएँ जो मन में हैं, इन्हें जब मनुष्य छोड़ देता है तो 'बुद्धि' सहज ही भगवान् में लग जाती है क्योंकि कामनाएँ ही उसके मन में भूख पैदा करती हैं, जैसे – हमको भूख लगी तो रोटी खाना है; वैसे ही भूख लगती है, जिससे प्रेम है, उससे बात करना, उससे मिलना–जुलना, उसको देखना, ये सब कामनाएँ मनुष्य में भूख पैदा करती हैं और जब भूख पैदा होती है तो वह अपूर्ण हो जाता है। जैसे भूखे हैं तो भोजन करते हैं, वैसे ही विषयों की भूख होती है। जिससे प्रेम होता है, उसको हम देखना चाहते हैं, उसके बारे में सुनना चाहते हैं, उसके पास बैठना चाहते हैं, लिपटना–चिपटना चाहते हैं – ये सब क्रियाएँ भूखे लोग करते हैं। जब ये सारी क्रियाएँ समाप्त हो जाती हैं, भगवान् के लिए हो जाती हैं तब फिर मनुष्य 'आत्मसंतुष्ट' हो जाता है। जब सारी क्रियाएँ हम 'भगवान्' के लिए करने लगते हैं तो फिर वह सच्ची शरणागति होती है। इस बात को भगवान् ने स्वयं कहा कि 'मच्चित्त' हो जाओ तो संसार के कोई भी कष्ट तुमको नहीं व्यापेंगे। श्लोक १८/५८ में भगवान् ने गारंटी दिया है – **"मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि"** मुझमें चित्त लग जाए तो संसार के जितने भी कष्ट हैं, उनको तुम मेरी कृपा से पार कर लोगे और यदि ऐसा नहीं करते हो तो "अथ चेत्त्वमहङ्कारान्न श्रोष्यसि विनङ्क्ष्यसि" विनष्ट हो जाओगे। 'मच्चित्त' कैसे हुआ जाए कि हम 'भगवान्' की गोद में रहें, जैसे – प्रह्लादजी थे या जितने बड़े भक्त हुए हैं। 'मच्चित्त' होने के लिए भगवान् ने एक ही बात कही है – **चेतसा सर्वकर्माणि मयि सन्न्यस्य मत्परः**। (गीता १८/५७) सभी कर्मों को मेरे लिए करो। 'मयि सन्न्यस्य' माने मेरे में, मेरे भीतर अर्थात् मेरे लिए ही करो। खाना–पीना, उठना–बैठना मेरे लिए करो, इससे तुम मत्पर हो जाओगे। तीन बातें अगर हैं तो मच्चित्त हो जाओगे। पहली बात है कि सभी कर्मों को 'भगवान्' के लिए करो, दूसरी बात है – बुद्धियोग। **'बुद्धियोगमुपाश्रित्य मच्चित्तः सततं भव।'**

(श्रीगीताजी १८/५७)

'समत्व' आ जाए, जो कुछ 'भगवान्' ने सुख–दुःख दिया है, उसमें बुद्धि को समान रखो।

हरे कृष्ण हरे राम गोविन्द कहिये।

जाहि विधि राखे राम ताहि विधि रहिये।।

'समत्वयोग' को 'बुद्धियोग' कहते हैं, तीसरी बात है – **'अथ चेत्त्वमहङ्कारान्न श्रोष्यसि विनङ्क्ष्यसि'** – अहम् न रहे, दैन्य रहे; इस प्रकार तीन बातें जिसमें हैं, वह 'मच्चित्त' बोला जाएगा और उसका काल भी कुछ नहीं कर सकता। पहला – सभी कर्म भगवान् के लिए हों, खाना–पीना, उठना–बैठना अर्थात् सभी कर्म भगवान् के लिए किए जाएँ, दूसरा – 'मन, बुद्धि' समान रखी जाए, रोया–गाया नहीं जाए; यह बुद्धियोग हुआ। तीसरा – दैन्य, हर हालत में दीन बनो। मीठा बोलो, मीठा देखो, मीठा सुनो, मीठा कहो, किसी प्राणी के प्रति कड़वापन मत रखो; ये बातें अगर आचरण में आ जाएँ तो संसार का कोई कष्ट तुमको व्याप नहीं सकता। इसको 'मच्चित्त' होना कहते हैं। "मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादत्तरिष्यसि" भगवान् कहते हैं कि मुझमें मन लगाने से तुमको मेरी कृपा मिलेगी और उस कृपा से तुम सभी कष्टों को पार कर जाओगे, कोई भी कष्ट तुम्हारे सामने टिकेगा नहीं। चाहे तुमको आग में जलाया जाए, चाहे पानी में डुबाया जाए, चाहे कोई बन्दूक से मारे। काल भी तुमको नहीं छू सकता है, अगर तुम मच्चित्त हो। जैसा कि पहले कहा गया कि 'मच्चित्त' होने के लिए सर्वप्रथम तो सभी कर्म भगवान् के लिए करो। हम लोग सभी कर्म अपने मन के अनुसार करते हैं। मन ने कहा तो कीर्तन करेंगे, मन ने नहीं कहा तो कीर्तन नहीं करेंगे

। मन ने कहा कि आज कीर्तन छोड़ दो तो छोड़ देते हैं; लेकिन नहीं, निष्ठा के साथ कीर्तन करो, उससे 'मच्चित्त' हो जाओगे। 'भगवान्' के लिए कर्म करना ही है। मन के लिए कर्म नहीं करना है, मन धोखा देता है, कहता है कि नहीं आज तो पड़े रहो, आज कुछ मत करो। उससे तुम 'मच्चित्त' नहीं हो पाओगे। 'मच्चित्त' होने के लिए कर्म केवल 'भगवान्' के लिए करो, मन के लिए नहीं करो। मन बहिर्मुखता की ओर ले जा रहा है। मन ने कहा कि यह काम गड़बड़ हो गया, बड़ा दुःख है; नहीं, बुद्धि को स्थिर रखो कि जो कुछ हुआ है, भगवान् की इच्छा से हुआ है। बुद्धि समान रखो, इससे तुम 'मच्चित्त' हो जाओगे। यदि परिवार में स्त्री–पुत्र की मृत्यु हो गयी है तो रोने से लौटेंगे नहीं। इस विषय में एक विचित्र उदाहरण सेठ हरगूलाल का है, जो ब्रजनिष्ठ संतशिरोमणि बाबा श्रीप्रियाशरणमहाराज के सेवक थे; और उन्हीं (श्रीप्रियाशरणमहाराज) की प्रेरणा से ही उन्होंने वृन्दावन में बाँकेबिहारीजी और बरसाने में श्रीजी की सेवा का प्रबन्ध किया था, उसका एक ही पुत्र था, उसकी मृत्यु हो गयी। लोग सेठजी के पास गए, क्योंकि उनका ब्रज में काफी यश हो गया था और उनके पास जाकर लोग बोले – सेठजी ! आपका एक ही पुत्र था, उसकी मृत्यु हो गयी, हमलोगों को इसका बहुत दुःख है। सेठजी बोले – अरे भाई ! मृत्यु क्या हो गयी, भगवान् को उसकी जरूरत थी, उन्होंने उसको अपने पास बुला लिया। यह तो खुश होने की बात है। दुःखी होने की बात ही नहीं है। यह उत्तर सुनकर लोग आश्चर्यचकित हो गए और बोले – सच में, इसने इतने दिन बाबामहाराज का सत्संग किया इसलिए बड़ा विचित्र जवाब दिया है। यह समत्व में स्थित है कि भगवान् जो कुछ भी कर रहे हैं, ठीक कर रहे हैं। इसी तरह से उसके जीवन की और भी घटनाएँ हैं, हानि–लाभ में वह रोता–झगड़ता नहीं था और समान व्यवहार रखता था। बहुत से उदाहरण हैं। मनुष्य को बुद्धियोग तभी मिलता है, जब वह समत्व का व्यवहार रखता है। पहले बुद्धि में समता आती है, तब क्रिया में आती है। बुद्धि में समता नहीं आती है तो क्रिया बिगड़ जाती है। बुद्धि में तुम किसी से चिढ़ गए तो उससे चिढ़ने का व्यवहार करोगे। बुद्धि में समान रहोगे तो सबसे समान व्यवहार करोगे और बुद्धियोग प्राप्त कर लोगे। जब कभी मन विषम हो जाए तो अपने आप को दण्ड दो, अपने गाल पर चाँटा लगाओ कि बुद्धि में विषमता क्यों आई ? बुद्धि में क्रोध क्यों आया ? एक शब्द भी गलत निकले तो अपने आप को दण्ड दो। यह बात अच्छी तरह से दिमाग में बैठ जाए इसलिए बार–बार कहना पड़ता है कि मच्चित्त होने के लिए तीन बातें जरुरी हैं। एक तो सभी कर्म भगवान् के लिए किया जाए, दूसरा बुद्धियोग अथवा समत्व, तीसरा दैन्य। जैसे एक स्त्री की चोटी बनाने में तीन लड़ लगती हैं वैसे ही मच्चित्त होने के लिए तीन बातें आवश्यक हैं। सभी कर्म भगवान् के लिए किये जाएँ। हम लोग अपने मन के अनुसार कर्म करते हैं, मन ने कहा तो चले गए, कीर्तन किया नहीं तो नहीं किया। यह बात मच्चित्त वाले के लिए ठीक नहीं है। मच्चित्त वाला तो एक निष्ठा से चलता है कि बुद्धि ने इस काम को करने के लिए कहा तो करना ही है। मन तो सदा अलग रहता है भगवान् से। उस मन के हिसाब से नहीं चलना हैं, बुद्धियोग से चलना है, मन के कहे हुए काम अलग होते हैं और समत्व बुद्धि वाले काम अलग होते हैं। समत्व बुद्धि वाला काम एक ही होता है, दस नहीं होते हैं। **'व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन ।'** निश्चयात्मिका बुद्धि एक ही होती है और जब शाखाएं कई हो गयीं तो **'बहुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्ध्योऽव्यवसयिनाम् ॥'** (श्रीगीताजी २/४१)

भगवान् ने कहा कि व्यवसायात्मिका बुद्धि एक ही होती है, जिसका निर्णय बदल जाता है, आज कुछ और कल कुछ और उसकी बुद्धि व्यवसायात्मिका नहीं है। व्यवसायात्मिका बुद्धि एक ही होती है। वह बदलती नहीं है, उसमें शाखाएं नहीं होती हैं कि कई शाखाएं निकल गयीं। एक ही है, एक ही तरह का जीवन। दूसरी तरफ बदलेगा कभी नहीं। बदलने वाला जीवन अस्थिर लोगों का होता है। उनका चित्त भगवान् में नहीं होता है। मच्चित्त तो वही है, जिसकी एक बुद्धि रहती है, इसलिए

मच्चित्त होने के लिए सभी कर्म भगवान् के लिए करने चाहिए । बहुत–सी शाखाएँ कब अलग होती हैं ? **'दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः'** दुःख आया तो रोने लग गए, उद्विग्न मन हो गया। भगवान् कहते हैं – 'दुःखेषु'– दुःख बहुत से हैं, बहुवचन है। शरीर का दुःख है, मन का दुःख है, इन्द्रियों का दुःख है। बहुत से दुःख हैं। परिवार में अनेक लोग होते हैं, उनके मिलने–बिछुड़ने का दुःख होता है । उनकी स्थितियों का दुःख होता है । बेटा दुःखी है तो माता भी दुःखी है। बहुत से दुःख होते हैं । सामाजिक–पारिवारिक, किसी भी दुःख में उद्विग्न नहीं होना चाहिए और सुखेषु– बहुत प्रकार का सुख होता है । इन्द्रियों का सुख, मन का सुख – उसमें स्पृहा (इच्छा) न हो जाये। इससे क्या होता है ? चित्त का राग,भय तथा क्रोध– ये समाप्त हो जाते हैं, **स्थितधीर्मुनिरुच्यते** – उसको स्थिर बुद्धि वाला स्थितप्रज्ञ कहते हैं। अतः मनुष्य को दुःख में दुःखी नहीं होना चाहिए तथा सुखों में स्पृहा नहीं करनी चाहिए क्योंकि इनसे हम भगवान् से अलग हो जाते हैं। चित्त से राग, भय, क्रोध हटते नहीं हैं।

श्लोक – ५७

यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम् ।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ।।

अभिनन्दन माने स्वागत करना । पैसा मिल गया, सांसारिक लाभ मिल गया तो स्वागत किया । अनभिस्नेह–हम लोगों का अभिस्नेह है मन में, इन्द्रियों में, जबकि सर्वत्र अनभिस्नेह होना चाहिए। किसी एक चीज में आसक्ति नहीं होनी चाहिए। शुभ और अशुभ को प्राप्त करके जो शुभ का अभिनन्दन करता है तथा अशुभ से चिढ़ता है, घबराता है तो उसकी बुद्धि स्थिर नहीं होगी । सर्वत्र अनभिस्नेह होना चाहिए। कोई अपना प्रेमी मिल गया तो ठीक है, नहीं मिला तो ठीक है। यही बात भगवान् ने अन्तिम समय तक सिखाई। जब पाँचों पाण्डव स्वर्गारोहण कर रहे थे तो पैदल हिमालय पर चढ़े तो सबसे पहले द्रौपदी गिरी। वह गिरी तो चिल्लाई – अरे ! मैं गिर पड़ी हूँ, मुझे छोड़कर क्यों जाते हो? युधिष्ठिर अपने भाईयों से बोले – रुको मत, चलते चलो, छोड़ दो द्रौपदी को । नकुल, सहदेव आदि बोले– भइया ! वह हम लोगों के साथ रही, उसको छोड़ना ठीक नहीं है। हम इसको छोड़कर बर्फ में आगे बढ़ें, यह ठीक नहीं है। युधिष्ठिर बोले– नहीं, इस संसार में जो गिर गया, छूट गया, उसके लिए दुःख नहीं करना चाहिए। फिर द्रौपदी ने पूछा – मैं ही गिरी, तुम लोग नहीं गिरे, कारण क्या है ? तब युधिष्ठिर ने कहा कि तेरा समान व्यवहार नहीं था, तू पाँचों पतियों से समान प्रेम नहीं करती थी। अर्जुन से तेरा विशेष प्रेम था,उतना औरों से नहीं था। इस अपराध से तू गिरी है। द्रौपदी को छोड़कर पांडव आगे चल पड़े क्योंकि भगवान् ने कहा – **यःसर्वत्रानभिस्नेह** – कहीं भी स्नेह मत करो, आसक्ति–ममता नहीं करो । फिर पाण्डव आगे चले तो सहदेव गिरे, बोले–भइया ! मैं गिर पड़ा हूँ, मुझको छोड़कर मत जाओ। युधिष्ठिर अन्य भाइयों से बोले– रुको मत, चलते चलो। सहदेव ने पूछा – मैं क्यों गिरा ? युधिष्ठिर बोले– तुमको ज्योतिष शास्त्र के ज्ञान का घमण्ड था, इसलिए गिरे हो। आगे नकुल गिरे तो बोले कि मुझे छोड़कर मत जाओ। युधिष्ठिर सबकी कमी बताते गए। तुम क्यों गिरे ? तुम्हारे में यह कमी थी। कहीं भी अभिस्नेह हो जाना गलत है। आगे जाकर अर्जुन गिरे, भीम बोले भइया ! अर्जुन गिर पड़ा है। युधिष्ठिर बोले– चलते चलो। सर्वत्र अनभिस्नेह होना चाहिए। आगे बढ़ो, जो गिर गया, उसे छोड़ते चलो। अर्जुन बोले–मैं क्यों गिरा ? युधिष्ठिर बोले– तुमको धनुर्विद्या का बहुत घमंड था और तुम्हारा द्रौपदी से विशेष प्रेम था। आगे चलने पर भीम गिरे तब भी युधिष्ठिर नहीं रुके। भीम बोले– मैं क्यों गिरा? युधिष्ठिर बोले– तुमको बल का घमण्ड था, इसलिए गिर गए। इस तरह से द्रौपदी और चारों भाई गिर गए लेकिन युधिष्ठिर नहीं रुके।

गौ–सेवकों की जिज्ञासा पर माताजी गौशाला का
Account number दिया जा रहा है –
SHRI MATAJI GAUSHALA, GAHVARVAN,
BARSANA, MATHURA
Bank – Axis Bank Ltd
A/C – 915010000494364
IFSC – UTIB0001058 **BRANCH – KOSI KALAN**
MOB. NO. – 9927916699

श्रीराधामानबिहारीलालजी के पाटोत्सव की झलकियाँ

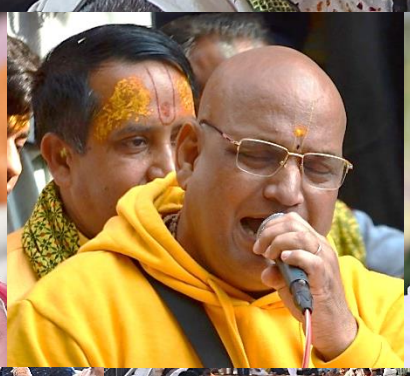

RNI REFERENCE NO. 1313397- REGISTRATION NO. UP BIL-2017/72945-TITLE CODE UP BIL-04953 POSTAL REGD.NO. 093/2021-2023
श्री मान मन्दिर सेवा संस्थान के लिए प्रकाशक/मुद्रक एवं संपादक राधाकांत शास्त्री द्वारा गुप्ता ओफ़्सेट प्रिंटर्स A- 125/1 , wazipur industriyal area, new delhi- 52 से मुद्रित एवं मान मन्दिर सेवा संसथान, गह्वरवन, बरसाना, मथुरा (उ.प्र.) से प्रकाशित